बाणमूठ

मुरारी शर्मा

मुरारी शर्मा की कहानियाँ अपने आप में नयी अर्थ छवियाँ और संकेत लेकर उभरती हैं। ढोल नगाड़ा गहन संवेदनात्मक कहानी है। अन्य कहानियों में भी सामाजिक सरोकार प्रतिबिंबित होते हैं।

— ज्ञानरंजन

मुरारी शर्मा की कहानियों में कथ्य और शिल्प की ताजगी होने के साथ-साथ अपने परिवेश को पकड़ने की कला है। इनकी कहानी फेगड़े का फूल बालमनोविज्ञान की अदभुत रचना है।

—पद्मा सचदेव

मुरारी शर्मा युवा पीढ़ी के चर्चित कथाकार हैं। ग्रामीण जीवन के दुःख-दर्द, विशेषकर वंचित समाज की जिंदगी को प्रस्तुत करती कहानियाँ ध्यान आकर्षित करती हैं।

— स्वयं प्रकाश

मुरारी शर्मा की कहानी बाणमूठ नई कथा दृष्टि और भाषा लिए हुए है।

— विजय मोहन सिंह

बाणमूठ

आदरणीय बड़े भाई
कवि अग्निशेखर जी को,
सादर भेंट !

मुरारी शर्मा
11 मई 2014

[illegible]

बाणमूठ

(कहानी-संग्रह)

मुरारी शर्मा

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No....5154...
Dated....28/11/23

अंतिका प्रकाशन

ISBN 978-93-80044-32-3

बाणमूठ

© मुरारी शर्मा

पहला सजिल्द संस्करण : 2010

मूल्य : 200.00 रुपए

प्रकाशक

अंतिका प्रकाशन

सी-56/यूजीएफ-IV, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II

ग़ाज़ियाबाद-201005 (उ.प्र.)

फ़ोन : 0120—6475212, 0-9868380797

ई-मेल : antika56@gmail.com

वेबसाइट : www.antika-prakashan.com

आवरण : जय कुमार

मुद्रक : आर.के. आफसेट प्रोसेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

BAANMUTH (Collection of Short Stories) by Murari Sharma

Published by Antika Prakashan, C-56/UGF-IV, Shalimar Garden Ext.-II

Ghaziabad-201005 (UP) India

Price : Rs. 200/-

वरिष्ठ कथाकार विद्यासागर नौटियाल
को सादर
कविमित्र सुरेश सेन निशांत,
जीवन संगिनी कृष्णा
और
बेटी कृतिका को
जिनका सहयोग और
प्रोत्साहन मेरे लेखन का संबल है

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

अनुक्रम

बाणमूठ 9
मुट्ठी भर धूल 18
ढोल नगाड़ा 26
फेगड़े के फूल 39
चल गए घोड़े... 48
मशाण नाले का प्रेत 58
जेठी 65
मेरे घर का दरवाज़ा 72
सेब तोड़ने वाली लड़की 84
गुफा-तंत्र 96
माँ का चश्मा 105
छिदरा 112

बाणमूठ

बचपन से ही कुछ अदृश्य आकृतियाँ मेरा पीछा कर रही हैं। साये की तरह। अक्सर सुनाई देने वाली इन चीख़ों के...अब मेरे कान भी आदी हो गए हैं। चीख़ों के इस भयावह शोर के बीच...नशे और उन्माद में डूबे हज़ारों लोगों का सैलाब। अंधेरे को चीरती सैकड़ों जलती हुई मशालें...ठहाके...अट्हास और इसके बीच ढोल नगाड़ों का डरावना शोर...दिल को दहला देता है...देह में कंपन्न सी होने लगती है। सैकड़ों वाद्ययंत्रों का यह शोर...किसी गहरी गुफा से उद्घोषित होता सा लगता है। यह सब किसी अदृश्य शक्ति द्वारा संचालित है...यंत्रवत सा।

और इन सबके बीच मैं...ख़ुद को बंधनों से जकड़ा हुआ महसूस करता हूँ। मानो किसी आदिवासी टोले द्वारा अपने कुल देवता को ख़ुश करने के लिए नरबलि का प्रयोजन किया जा रहा हो। न जाने क्यों मेरा अवचेतन मन स्मृतियों के बियावान जंगल में भटकता हुआ फिर उसी आदम युग में लौट जाता है।

शहर में आने के बाद भी स्मृतियों का साया मेरा पीछा नहीं छोड़ता है। ख़ून-ख़राबे और दहशत के दृश्य यहाँ भी उभर आते हैं...इसकी ज़द से कोई भी मुक्त नहीं है। न गाँव और न ही कोई शहर, चाहे वो दुनिया के किसी भी हिस्से में क्यों न हो। शाम के समय शहर में चहल-क़दमी को निकले हर चेहरे पर अजीब सा तनाव तारी रहता है। अपने गाँव की तरह ही चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा शहर भी क़िले की तरह नज़र आता है। बाहरी खुलेपन के बावजूद ...परंपरा...आस्था और अंधविश्वास की मजबूत दीवारों में जकड़ा हुआ। शहर की भीड़ में हर आदमी अकेला सा है...या फिर मैं ही अकेला हूँ?

इतिहास के पन्नों में दर्ज इस शहर के बाज़ार, चौराहे, भवन और पुराने स्मारक पराये से क्यों हैं...दुनिया अपने-आप में ही क्यों सिमटती जा रही है? क्यों आदमी इतना असुरक्षित और संवेदन शून्य होता जा रहा है...आदमी की पहचान और सुरक्षा अब धर्म...जाति...प्रांत और क्षेत्र से होने लगी है...आख़िर क्यों?

किसी अदृश्य स्थान पर मुझे अक्सर उन्मादी भीड़ दिखाई देती...देवता के मंदिर के सामने दर्जन भर भैंसों के कटे हुए सिर...लहू से सराबोर आँगन...और उस पर नंगे पाँव नृत्य करती महिलाएँ नज़र आती हैं...मगर चेहरे सबके अस्पष्ट...अपहचाने से। मगर देवता की अराधना में लीन। इससे हटकर लहू से सन्ने दरात, तलवारें...खंडे लिए लाल आँखों वाले उन्मादी पुरुष...जो लगातार घूरते चले जा रहे हैं। नेपथ्य में ढोल-नगाड़ों का शोर लगातार बढ़ता जाता है...और मेरी छटपटाहट भी।

वह लाल आँखों वाली आकृति मेरी ओर बढ़ती जाती है...क़दम-दर-क़दम। मेरा रोम-रोम काँप उठता है...बदन पसीने से तर-ब-तर। मैं चीख़ना चाहता हूँ...सारी शक्ति संचित कर बहुत ज़ोर से चीख़ने का प्रयास करता हूँ...पर आवाज़ गले में अटक कर ही दम तोड़ देती है। होंठ फड़फड़ाकर रह जाते हैं। वह आकृति बराबर मेरी ओर बढ़ती चली आ रही है...लगातार। भागने का प्रयास करता हूँ...बहुत तेज़ दौड़ता हूँ...इतना तेज़ की साँस फूलने लगती है। थोड़ा रुकता हूँ तो फिर वही आकृति मेरे सामने प्रकट हो जाती है। अब उसका मजबूत हाथ मेरे गिरेबान तक पहुँच जाता है...गले पर उसके पंजे की पकड़ मजबूत होने लगती है...मेरा दम घुटने लगता है...आँखें बाहर निकलने लगती हैं। वह मुझे घसीट कर उसी स्थान पर ले जाता है। जहाँ परंपरा और आस्था को और भी मजबूत बनने के लिए बेज़ुबान व निरीह प्राणियों की बलि दी जा रही थी। उसका चेहरा और भी डरावना हो जाता है...मेरे हाथ-पैर बांध कर वह देवता के आगे पटक देता है...देवता को ख़ुश करने के लिए मेरी बलि दी जानी थी। ढोल-नगाड़ों का ताल अब और भी भयानक हो उठता है...वह मेरे सर को धड़ से अलग करने के लिए जैसे ही तलवार हवा में लहराता है...मैं ज़ोर से चीख़ उठता हूँ।

मेरी चीख़ सुन दादी की नींद टूट जाती है। पसीने से लथपथ मेरी देह में कंपन होने लगती है। दादी लालटेन की रोशनी तेज़ कर मुझे झंझोड़ती है। क्या हुआ बचुआ? फिर वही डरावना सपना देखा क्या? डरा सहमा-सा मैं दादी की गोद में दुबक़ जाता और दादी टूटे हुए मिट्टी के ठिक्कर में अंगारे डालकर धूणी दे डालती।

बचपन से ही मैं इस मायावी लोक में विचरण कर रहा हूँ...यही छवियाँ बराबर मेरा पीछा करती आ रही हैं। जंत्र-मंत्र-तंत्र वाले और प्रेत बाधाओं को दूर करने में सिद्धहस्त ओझाओं को मैंने क़रीब से देखा है। जंगल की तराई में चारों ओर से छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा हमारा गाँव आस्था और अंधविश्वास का कभी न टूटने वाला मजबूत क़िला था। देव व आदम के बीच के रिश्तों को परिभाषित करती परंपराएँ कब यहाँ रूढ़ियाँ बन गईं, कोई नहीं जानता। मगर हमारे परिवार में इसकी सूत्रधार केवल दादी ही रही है।

दादी कहती है और लोगों से भी सुन रखा था...कभी किसी युग में यह गाँव बियावान जंगल हुआ करता था। ...जहाँ किसी आदिम जाति का राज्य था...जो अपनी कुल देवी को प्रसन्न करने के लिए नरबलि देते थे। कहते हैं कि कालकूट प्रदेश के दो वासी रास्ता भूल इस जंगल में भटक गए और पकड़े गए। जब उन्हें बलि के लिए तैयार किया जा रहा था...तो एक साधु महात्मा जो इसी जंगल में पीपल के नीचे तपस्या कर रहा था। उसने उन लोगों को ऐसा करने से रोका भी...पर वे नहीं माने। वहीं पर पकड़े गए दोनों ही व्यक्ति भी काली के उपासक थे...उन्होंने अपनी आराध्य देवी को इस संकट के समय याद किया और देखते ही देखते आसमान काले घनघोर बादलों से घिर गया।...मेघ गर्जना और बिजली कड़कने लगी...उस जगह पर बीज के गोले पड़े और पल भर में यह जगह शमशान बन गई। दादी की यह कथा कितनी सच्ची और कितनी काल्पनिक थी...नहीं जानता।

दादी आगे कहती—इसके बाद उस जगह पर हर बारह साल के बाद दर्जनों भैंसों और सैकड़ों बकरों की बलि दी जाती थी। इसके बाद बार-बार वही मंजर मेरी आँखों के सामने उभरने लगता।

हमारे घर के पीछे सेमल का विशाल पेड़...अब भी मौजूद है। ज़मीन से उभरी उसकी जड़ों को आज भी पूजा जाता है। दादी कहती कि—उस पेड़ में नारसिंह देवता का वास है...दादी से यह भी सुन रखा था कि—नारसिंह देवता सफ़ेद कपड़ों में कई बार उसे दिखाई दिया। वैसे तो नारसिंह देवता नई नवेली सुहागिन औरतों पर झपटता है...कहते हैं, यह ख़ूबसूरत औरतों का रसिया होता है...मगर जब उसे किसी एक स्थान पर स्थापित करके पूजा जाए...तो वह घर परिवार की रक्षा करता है।

हमारे परिवार का कोई बुजुर्ग पहुँचा हुआ तांत्रिक था। वही नारसिंह देवता को यहाँ लाया था। रियासत के राजा की रानी पर इसकी झपट पड़ी थी। रानी इसके प्रकोप से परेशान थी...जब नारसिंह देवता का प्रकोप बढ़ जाता तो रानी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगती...उसे बेहोशी का दौरा पड़ता...दंदसुखड़ा बंध जाती...जिसे चिमटे से खोलना पड़ता।

राजा ने ऐलान कर रखा था...जो कोई भी रानी को ठीक करेगा...उसे मुँह माँगा ईनाम मिलेगा। मगर लोग यह भी जानते थे कि राजा लोग सनकी होते हैं...अगर रानी ठीक नहीं हुई तो...राजदंड भुगतना पड़ सकता है। पर...हमारा वह बुजुर्ग रानी को नारसिंह के पाश से मुक्त करने में सफल रहा।...और उसने इसे सेमल के पेड़ में अपने कुल देवता के रूप में स्थापित कर दिया। तब से इसे थानी के नाम से जाना जाता है। राजा ने ख़ुश होकर एक गाँव की ज़मीन दान के रूप में दे दी।

कुल देवता के रूप में थानी और भगवती महिषासुर मर्दनी दोनों ही हमारे परिवार की सुख-समृद्धि और ख़ुशहाली के संवाहक माने जाते।

दादी हमेशा मेरे गले में देवी के गूर द्वारा मंत्रित काला धागा और जंत्र डाले रहती। और सेमल के पेड़ से छुआ कर लाई गई सरसों की धूणी लाल मिर्च डाल कर बंद कमरे में मुझे तब तक देती रहती...जब तक कि मैं खाँस-खाँस कर बेहाल न हो जाता...मैं जितना तड़पता दादी को उतना ही सुकून मिलता...उसे लगता कि ऐसा करके वह मेरे भीतर प्रवेश कर गई बुरी आत्मा को परेशान कर रही हैं।...

दादी के इन टोटकों से मैं परेशान था। हमारे घर में दादी की ही हुकूमत चलती थी...दादू और पिता उसके सामने बेबस नज़र आते।...और दादी थी भी मर्द का अवतार...घर-परिवार और ज़मीन-जायदाद के झगड़े वही निपटती थी। कोर्ट-कचहरी तक भी नहीं छोड़ती। मुझे बार-बार इस तरह के सपने आते तो दादी ने पिता से कहा—भाऊ ...इसे नीच देवता की झपट पड़ी है ...तभी तो कोई भी धूणी-धागा असर नहीं कर रहा है। इसका तो इलाज करवाना ही पड़ेगा। दादी का हर वाक्य सबके लिए आदेश था।

बस हो गया मेरा इलाज शुरू। रात के अंधेरे में ओझा को बुलाकर बांधे रखा गया...मोरछडू को बार-बार वह मंत्र पढ़ते हुए मेरे माथे पर लगाकर धरती पर पटक देता...कई दिनों तक यह प्रक्रिया जारी रही। और एक दिन आधी रात को मुझे चुपचाप शमशानघाट में ले जाया गया...आस पड़ोस वालों को इसकी भनक न पड़े इसका खास ख़याल रखा गया था। ओझा को बुलाकर पूजा करवाई गई...काला भेडू काटा गया और नीच देवता को शमशानघाट में कील दिया गया।

और मुझ पर कई बंदिशें लाद दी गईं। स्कूल में किसी के हाथ का दिया कुछ भी नहीं खाना...नीच जाति के लड़कों से दूरी बनाए रखना...उनके साथ उठना-बैठना भी नहीं...जेब में ओझा द्वारा मंत्रित सतनाजा डाले रखना आदि। ऐसी कई हिदायतें...घर से निकलने से पहले मुझे रटाई जाती। ...और मुझे इन सब हिदायतों और बंदिशों को तोड़ने में मज़ा आता।

हमारे पड़ोस में ही राजपूतों की टोली थी...कभी उनसे हमारे परिवार की ख़ूब घनिष्ठता थी। मगर अब ऐसा नहीं था। हालाँकि, एक ही घर गाँव के होने के नाते बुज़ुर्गों के रिश्ते की डोर ख़ुद-ब-ख़ुद जुड़ ही जाती है। उसी परिवार की बुजुर्ग महिला लुहाखरन दादी...कभी दादी की पक्की सहेली थी। खेती-करसाणी साथ-साथ करते हुए दोनों परिवारों का मेलजोल बढ़ गया था। लुहाखरन मेरी दादी की धर्मबैहण बन गई थी...और वह दादी को ''बोबो'' कह कर बुलाती थी। लगे गलाए में भी नाते रिश्तेदार हो न हो पर लुहाखरों का परिवार अवश्य होता। दादी

कहती—सबसे पहले तो भई आसी-पड़ोसी ही काम आते हैं...मरने-जीणे के साथी। और सुख-दु:ख में भी नाते-रिश्तेदार बाद में पड़ोसी पहले खड़े होते हैं। दादी सबको यही उपदेश देती कि आस-पड़ोस में बनाकर रखनी चाहिए।

मगर दादी की यह कसम जल्दी ही टूट गई। दोनों परिवारों की दाँत कटी दोस्ती दुश्मनी में बदल गई। गर्मियों के दिन थे ...सूखा पड़ा हुआ था...ज़मीन पत्थर की तरह सख़्त हो चुकी थी। हल के फाल को जितना दबाने का प्रयास करो उतना ही उच्छाल मारता। पेड़-पौधे बिन बारिश कुमलाह रहे थे...कौवे पानी की बूँद की आस में नलकों की सूखी टुंटियों पर चोंच मार कर उड़ जाते। डंगर-ढोरों को पानी पिलाने के लिए नाले के किनारे ले जाया जाता था। इस भयंकर सूखे में केवल नाला ही पानी का एकमात्र आसरा था।

नाला पास होने की वजह से हमारी सारी ज़मीन को कुहल लगती थी। लुहाखरों के खेत पहले होने की वजह से पानी वहाँ से होकर ही आता था। मगर वे अबकी बार पानी छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे—पहले हमारे खेतों की सिंचाई होगी फिर आपको मिलेगा पानी। लुहाखरा दादू अकड़ गया था। हमारे परिवार की ओर से प्रस्ताव था कि एक टाइम वे अपने खेत में पानी लगाए और एक टाइम हम लगाते हैं। मगर वे किसी भी सूरत में पानी छोड़ने को राजी नहीं हुए तो नौबत लड़ाई-झगड़े तक पहुँच गई। पहले वाकयुद्ध...फिर मल्लयुद्ध...और अंत में डाँग-सोठे से एक दूसरे के सर फोड़ डाले। ...मामला थाने से होता हुआ कोर्ट-कचहरी तक पहुँच गया। वकीलों की दलीलों और दावपेचों में दोनों ही परिवार इस कदर उलझे कि समझौते के कोई भी प्रयास सिरे नहीं चढ़ पाए। दोनों परिवारों के बीच दुश्मनी के बादल छँटने के बजाय गहराते ही जा रहे थे। और कभी बरसते तो गालियों की बौझार के रूप में ।

दोनों ही परिवारों में आपसी बोलचाल बंद थी। मगर दादी और लुहाखरन दादी के बीच परोक्ष वाकयुद्ध अब भी जारी था...एक- दूसरी पर ताना कसने से वे बाज नहीं आती थी। खेत-खलिहान, पनघट व गौशाला में आते-जाते दोनों का सुबह-शाम आमना-सामना हो ही जाता था। ऐसे में दोनों चार क़दम दूर से ही रास्ता छोड़ देती ...मानो एक दूसरी का साया भी अपने ऊपर नहीं पड़ने देना चाहती थी। और...एक-दूसरी को ताना देने के लिए पशुओं को ही लक्ष्य बनाया जाता। बेजुबान पशुओं को माध्यम बना कर दोनों ही अपने मन का गुब्बार निकाल देती...उलाहने की भाषा दोनों ही बख़ूबी समझती थी...और उसका उत्तर भी तत्काल देकर हिसाब बराबर कर देती।

ओ मुई भैंसिए तू खा-खा कर मोटी होती जा रही है...देख कैसे क्याड़ा

उठाकर कर जा रही है...तेरा क्याड़ा बढेया। लुहाखरन के इस ताने का जवाब भी दादी उसी की भाषा में देते हुए गाय को लक्ष्य बनाकर ऊँची आवाज़ में कहती—तेरी दूसरे के खेतों में मुँह मारने की आदत नहीं गई...भगवान करे मिरग पड़े तुझे तो...तभी मेरे कलेजे में ठंडक पड़ेगी।

अदालत में भी मुकदमा सात साल तक चला और फ़ैसला फिर वही हुआ ...लुहाखरों को हमारी ज़मीन के लिए वैसे ही पानी छोड़ना पड़ा...जैसे पहले छोड़ा जाता था। मगर इन सात सालों में दोनों परिवारों में जैसे सात जन्मों का बैर हो गया था। अब तो गाँव वालों के लिए भी यह लड़ाई परेशानी का कारण बनती जा रही थी। किसी के लगे लाए में दोनों परिवार एक साथ नहीं जाते थे। यही नहीं एक दूसरे घर में कोई बीमार हो जाता तो...शक होता कि दुश्मनों ने कोई जादू-टोना कर दिया है।

देवता के गूर ने दाणे देखे और मुंडी हिलाते हुए कह दिया—दुश्मनों ने बाणमूठ छोड़ी है...जब तक किसी की बलि नहीं ले लेगी...वापस नहीं होगी। बस फिर क्या था दादी को तो जैसे थाप लग गई।

लुहाखरन के सिवा और कौन हो सकता है...डैणमंत्र करके दूसरों का घर उजाड़ना चाहती है। घोर कलजुग आ गया है। हे...थानी बाबा अब तू ही रच्छया कर...रच्छया कर मेरे कुल की! दादी का प्रलाप उस वक़्त और भी बढ़ जाता जब घर में कोई बीमार हो जाता था। अब मन ही मन दादी भी घबराने लगी थी।

—बाणमूठ तो सर्वनाश करके ही छोड़ती है...अब दोनों ही घरों में सोग पड़ेगा।

इसी बीच दादी चल बसी। कोई बीमारी नहीं...ज्वर ताप भी नहीं...रात को सोई तो फिर कभी नहीं उठी। साल-छह महीने बाद ही लुहाखरा दादू और फिर लुहाखरन दादी भी गुज़र गए। गाँव वालों ने कहना शुरू कर दिया कि अब बाणमूठ असर करने लगी है...दोनों ही घरों में बारी-बारी सोग पड़ गया...घर के बड़े बुजुर्गों से शुरुआत हुई है। इससे तो घर-ग्वायण दोनों ही खीले हो जाते हैं...अब भी वक़्त है दोनों परिवार आपस में सुलह कर लो भाई...ऐसी दुश्मनी ठीक नहीं है...घर गाँव की बात है। ...और फिर लड़ने वाले तो चले गए।

गाँव वालों के कहने पर आख़िर दोनों ही परिवार सुलह करने को राजी हो गए। ...बाणमूठ को वापस करना इतना आसान नहीं है...दोनों ही परिवारों को माता महिंषासुर मर्दनी केमंदिर में भैंसे की बलि देनी होगी। दोनों परिवारों की मौजूदगी में भैंसे की बलि दी जाएगी...तब कहीं जाकर बाणमूठ वापस होगी।

...धार के उस पार चीड़...बान...देवदार और बुराँस के विशालकाय पेड़ों से घिरा माता महिंषासुर मर्दिनी का मंदिर। सड़क से दूर ...कठिन पगडण्डी और खड़ी चढ़ाई के बाद इस रमणीय स्थल तक पहुँचा जा सकता था। आम दिनों में इक्का-

दुक्का लोग ही यहाँ आते थे। मगर आज तो हज़ारों लोगों की भीड़ इस ओर उमड़ पड़ी थी। अपनी-अपनी सुखना और मनौती के पूरी होने पर भेडू-बकरे और भैंसे बलि के लिए ले जा रहे थे। मंदिर के चारों ओर जहाँ जगह मिलती वहीं पर खुँटा गाड़ कर तंबु तान देते। हमारे और लुहाखरों के परिवारों ने भी खुली सी जगह देख कर डेरा लगा लिया। वर्षों की दुश्मनी अब दोस्ती में बदलती जा रही थी...वर्षों से पड़ी मन की गाँठें अब धीरे-धीरे खुलने लगी थी। दोनों ही परिवारों ने साँझा जोड़ डालकर भैंसा ख़रीदा था...बाक़ी ख़र्च भी बराबर बाँटा जाना था।

देवी के मंदिर में भी भारी भीड़ थी...रात भर जगराता होना था। आधी रात को देवी का रथ मंदिर की ओर लाया गया। सैकड़ों जलती हुई मशालें धार के उस पार जगमगाने लगीं। ढोल-नगाड़ों का वही डरावना शोर...भीड़ का उन्माद...गगनभेदी जयघोष। बीच-बीच में बंदुकों के चलने की आवाज़ें भी आने लगी...बुरी आत्माओं को भगाने के लिए...हवाई फायर किए जा रहे थे। रात के गहन अंधकार में यह सब डरावना सा लग रहा था। जलती हुई मशालें...उन्मादी भीड़ और वाद्ययंत्रों का शोर और दिल को दहलाने वाली गोलियों की आवाज़...यही सब तो मेरे अवचेतन मन में बार-बार हलचल मचाते रहे हैं। देवी के मंदिर में मौजूद श्रद्धालुओं की भीड़ किसी अदृश्य शक्ति के वशीभूत हो कर उन्मादी और बेचैन सी हो रही थी। जबकि रात के अंधेरे को चीरते हुए आ रही देवी की शोभा-यात्रा उत्सुक्ता और रोमांच को बढ़ाने लगी।

भीड़ का हिस्सा बना मैं...मानो स्मृतियों के उसी बीहड़ में लौट आया हूँ। मेरे सामने सब कुछ वैसा ही है...असंख्य जलती हुई मशालें...ढोल-नगाड़ों का भयभीत करने वाला शोर...भीड़ का उन्माद...लाल आँखों वाले चेहरे...सब कुछ वैसे ही हैं। उफ ...मुझे यह क्या हो रहा है। लगा कि मैं अभी चीख़ पड़ूँगा...फिर भी किसी तरह ख़ुद को सँभाले हुए हूँ। मेरी देह में कंपन महसूस होने लगी...पसीने से तर-ब-तर हो गया हूँ...नज़दीक आता यह शोर और भी भयानक हो उठता है...मंदिर के पास देवी का रथ पहुँचते ही भीड़ में हरकत शुरू हो जाती है...एक दूसरे के पीछे ठेलते...धक्कम-पेल कर हर कोई आगे जाने की फिराक में था। सब एक दूसरे को पीछे धकेल आगे निकल रहे थे...मानो रग्बी के मैदान में खिलाड़ी एक दूसरे से जूझ कर गेंद के लिए छीना छपटी कर रहे हों...और ...मैं रग्बी की गेंद की तरह छिटक कर भीड़ से बाहर ...बहुत पीछे धकेल दिया गया। खुले आकाश के नीचे मैं लंबी-लंबी साँस ले ख़ुद को नियंत्रित करने की कोशिश करता हूँ।

और सुबह। सुबह का दृश्य तो और डरावना था...रक्त रंजित देवी का प्रांगण...मन में अजीब सी वितृष्णा पैदा कर रहा था। एक कोने पर भैंसों के कटे हुए सात-आठ सिर पड़े हुए थे। जबकि उनके धड़ चमारों द्वारा घसीट कर नाले की ओर

ले जाए जा रहे थे। अरे ये क्या...मंदिर से निकली एक महिला नंगे पाँव ख़ून से लबालब भरे आँगन में चहल-कदमी करने लगी। इसके बाद एक और...फिर...चार-पाँच...आठ-दस और फिर सैकड़ों महिलाएँ माता की भेंट गाते हुए नंगे पाँव...आँगन में बिखरे ख़ून पर नृत्य करने लगी। यह सिलसिला देर तक चलता रहा और मैं अवाक सा यह सब देखता रहा...हैरान ...परेशान सा। अचानक अपने कंधे पर किसी के हाथ का दबाव महसूस करता हूँ। पीछे मुड़कर देखा तो पच्चपन-साठ के बीच की वय का स्कालर सा दिखने वाला एक व्यक्ति मेरे सामने था। उसके चेहरे पर सफ़ेद दाढ़ी थी।

—लगता है तुम यहाँ पहली बार आए हो? यहाँ के तो लगते नहीं। मुझे गौर से देखते हुए वह बोला था।

—जी ...मैं पहली बार यह सब देख रहा हूँ। मैंने उसकी बात का जवाब दिया—पर आप भी तो यहाँ के नहीं लगते?—हाँ...मैं यहाँ का नहीं हूँ...मेरा नाम प्रोफेसर वीएन वशिष्ठ है। उसने अपना परिचय दिया—इस तरह की देव परंपराओं पर शोध कर रहा हूँ मैं। अपने प्रोजेक्ट के सिलसिले में पिछले तीन सालों से लगातार यहाँ आ रहा हूँ। मेरी ओर मुखातिब होते हुए उसने कहा—आपको कैसी लगती हैं ये परंपराएँ...इनका संरक्षण ज़रूरी है क्या?

—बकवास है ये, प्रोफ़ेसर साहब आप इसे परंपरा कह रहे हैं? मुझे तो यह आदिम युग का पाखंड और रूढ़ी लगता है...बेजुबान पशुओं की क़त्लगाह है यह। आप देख रहे हैं, ये महिलाएँ किस तरह बेजबान पशुओं के ख़ून पर नृत्य कर रही हैं।

वह कुछ पल मेरी ओर देखता रहा...फिर बोला—इसके पीछे भी सांइटिफिक नजरिया है...जानते हो नंगे पाँव ये महिलाएँ ख़ून पर इसलिए नृत्य कर रही हैं...कि ख़ून से इनके पाँवों की ख़ूबसूरती और भी बढ़ जाएगी। इनके पैरों में आई बिवाइयाँ इससे ठीक हो जाएगी। शायद तुमने ख़ून से नहाने वाली रानी की कहानी नहीं सुनी होगी...जो अपने को चिरयौवना बनाए रखने के लिए ख़ून से नहाती थी।

-कितना घृणित है यह सब। मैंने कहा—सर्कस के जानवरों तक को बचाने वाली मेनका गांधी तक शायद ही इन बेजुबान पशुओं की आवाज़ पहुँच पाए। और पेटा की वो ख़ूबसूरत महिलाएँ पशुओं पर अत्याचार के नाम पर नंगे बदन फोटो खिंचवा कर पब्लिसीटी बटोरती है और कुछ नहीं। मीडिया वाले भी पशुओं पर होने वाले ऐसे अत्याचारों को उजागर नहीं करते।

कोशिश की थी। मेरी बात को काटते हुए उसने कहा—पिछले साल आए थे कुछ पत्रकार मगर...उन्मादी भीड़ ने उनके कैमरे तोड़ दिए...पीट-पीट कर बेहाल कर दिया बेचारों को...आस्था के नाम पर पुलिस व प्रशासन भी मूक दर्शक बना रहता है।

अचानक मुझे ख़याल आया—बाणमूठ वापस हटाने के लिए तो हम भी भैंसा बलि के लिए लाए हैं...दोनों परिवारों द्वारा पूजा अर्चना कर उसे बलि के लिए तैयार किया जा रहा था। प्रथा के अनुसार बलि से पहले भैंसे को काटने वाला व्यक्ति बोली लगाता है। जो सबसे अधिक बोली लगाएगा वही भैंसे को काटने का गौरव हासिल करता है। ...मेरे पहुँचने से पहले ही भैंसे की बोली लग चुकी थी...बोली देने वाला लंबा तगड़ा...लाल आँखों वाला व्यक्ति था...जिसने पाँच सौ रुपए की बोली लगाकर...भैंसे को काटने का हक़ हासिल किया था।

भैंसे को पूजा के बाद उसी चबुतरे के पास खड़ा कर दिया गया था...और उस पर खड़ा वह लाल आँखों वाला आदमी...हाथ में दरात लिए अपनी मूँछों को ताव देकर गर्वोन्नत सा भीड़ की ओर देख रहा था। भीड़ का उन्माद लगातार बढ़ता जा रहा था...ढोल-नगाड़ों की गर्जना के बीच बाणमूठ हटाने के लिए भैंसे की बलि दी जानी थी। इससे पहले कि मैं उस तक पहुँच कर भैंसे को कटने से बचाता...उसने दोनों हाथों को हवा में लहराकर भरपुर वार भैंसे की गर्दन पर कर दिया था। भैंसे का कटा हुआ सिर...धड़ से अलग ज़मीन पर जा गिरा था। और उसके धड़ से ख़ून की धार फूट पड़ी थी...ज़मीन पर गिर कर वह छटपटा रहा था...और लाल आँखों वाला वह आदमी लहू से सना दरात लिए गौरवान्वित सा उसे देख रहा था। ख़ुश तो दोनों ही परिवार वाले भी थे...शायद अब दोनों ही परिवारों के सर से बाणमूठ का साया उठ चुका था।

घर आकर भी मन उचाट सा था...उस बेजुबान प्राणी को बचा न पाने का मलाल अभी मुझे था...अखबार खोलता हूँ तो वहीं ख़बरें मुंबई में ग़ैर मराठी लोगों की राज ठाकरे के समर्थकों द्वारा पिटाई। आत्मघाती हमले में सैंकड़ों हलाक। मन्दिर में हमला...मस्जिद में बम फटने से कई मरें, सैकड़ों घायल। धर्म, भाषा और क्षेत्र के नाम पर हो रहा है...यह ख़ून-खराबा। जैसे सारी दुनिया ही क़त्लगाह बन गई है। टीवी ऑन करता हूँ...बम धमाके में मारे गए...लोगों के परखचे सड़क पर बिखरे हूए...टीवी कैमरा बार-बार वहीं पर जूम किय' जा रहा था...क्लोजप दिखाने का प्रयास। कितना असुरक्षित हो गया है आदमी भी...सारी दुनिया मानो किसी मनहूसियत के साये में हो...आख़िर कौन लोग हैं जो आम आदमी के जीने के हक़ को भी छीन लेना चाहते हैं ? हमारे परिवार की बाणमूठ तो एक भैंसे की बलि से दूर हो गई। ...पर सारी दुनिया जो बाणमूठ की चपेट में है...यह और कितनों की बलि लेकर दूर होगी ? टीवी बंद करके मैं सोने का प्रयास करता हूँ तो फिर वही स्मृतियाँ उभर कर सामने आने लगती हैं...मैं चीख़ उठता हूँ ...मगर इस बार मेरी चीख़ सुनने वाला कोई नहीं था।

हंस, 2008

मुट्ठी भर धूल

आज रूलिया भोर होने से पहले ही उठ गया था। आसमान की ओर मुँह उठाकर ही उसने अंदाज़ा लगा लिया था कि सुबह होने में अभी थोड़ी देर है। जंगल पानी जाने के बाद वह सीधा दोघरी की ओर चला गया। और दिनों की बात होती तो वह रास्ते में भ्यागड़ा गाते हुए जाता—उसके गाने की आवाज़ सुनते ही गाँव वाले भी उठ जाते, मानो उसका गाना उनके लिए सुबह उठने का अलार्म हो। मगर आज उसने ऐसा कुछ नहीं किया था। दोखरी में बंधे बैलों—बोलू और खैरू यही नाम रखे थे उसने अपने बैलों के। उन्हें बाहर बांध कर उनकी पीठ थपथपाई, मालिक के स्पर्श को पहचान बैल रंभाने लगे, आम दिनों की बात होती तो वह उनसे बात करता पुचकारता, मगर आज उसने ऐसा नहीं किया। शाम को निकाल कर रखा चारा उनके आगे खोल दिया। इसके बाद नौण से पानी का घड़ा भर कर वापस घर लौट आया।

रूलिया के इस बदले हुए रूप से न केवल घर वाले बल्कि गाँव के लोग भी हैरान थे। क्याण गाँव में आज भी सुबह हुई थी, मगर इस सुबह का रंग फीका था। यह पहला मौक़ा था जब लोगों की आँख रूलिया के गाने की आवाज़ सुने बिना ही खुली थी। भोर होते ही अपनी सुरीली आवाज़ से सबको जगाने वाले रूलिया को अचानक यह क्या हो गया है ? कमरे में सोयी उसकी पत्नी जसोधा को यह समझते देर नहीं लगी। रात भर वह चैन से नहीं सो पाया था, कभी इस ओर तो कभी उस ओर करवट बदलता रहा था वह। उसके मन पर डैम बनने का बोझ इस कदर छाया था कि वह अपने भीतर उठ रहे तुफान पर काबू नहीं रख पा रहा था। घर लौटते ही वह सीधा रसोई में गया, चूल्हे की गर्म राख के सहारे रात काटने वाली बिल्ली की म्याँऊ-म्याँऊ ने उसका ध्यान भंग किया। हर रोज़ वह पत्नी के उठने से पहले बिल्ली को पारी से दूध निकालकर देता था। इसके बाद ही चूल्हे की राख के निचे दबे अंगारों को निकालकर आग जला देता। मगर आज उसने ऐसा नहीं किया। आग जलाकर दो-तीन अंगारे तंबाकू की कटोरी में डाले और सुड़क-सुड़क कर हुक्के से

धुंआ उड़ाने लगा। गहरी तंद्रा में डूबते हुए अचानक उसके मुँह से निकल पड़ा—डैम बनाएँगे सा-ले...डैम बनाएँगे...हरामी...हम कहाँ जाएँगे...कहाँ रहेंगे हम?

नदी पर डैम बनेगा...और सारा गाँव पानी में डूब जाएगा। खेत-खलिहान, घर आँगन सभी पानी की कोख में समा जाएँगे। इसके साथ डूबेगी सदियों पुरानी विरासत, पुरखों की धरोहर और डूबेगी जवानी के दिनों की चंद यादें। इतिहास के पन्नों में क्याण गाँव भले ही अंकित रहेगा। मगर दुनिया के भूगोल से इसका नाम सदा के लिए मिट जाएगा। आम के पेड़ की घनी छाँव में रूलिया गहरे सोच में डूबा था। जबसे उसने सुना है कि सतलुज पर बांध बनेगा और उसका गाँव पानी में डूब जाएगा, वह बावला सा हो गया है। नदी पर डैम बने उसे कोई ऐतराज नहीं। पानी से बिजली बने, कारख़ाने चले, देश तरक़्क़ी करे बहुत अच्छी बात है। मगर इस सबके लिए उसका घर-बार और गाँव क्यों उजड़े? बस इसी का ऐतराज है उसे।

गाँव की बैठक में भी उसने अपना विरोध दर्ज किया था। लेकिन खारिज कर दिया गया। उसके अपने ही बेटे ने भरी पंचायत में डैम बनने के पक्ष में लंबी चौड़ी तहरीर दे डाली थी। डैम बनेगा तो आसपास के गाँव के लोगों को रोज़गार मिलेगा चाहे कुछ बरस तक ही सही। वैसे भी दिहाड़ी लगाने के लिए घर से बाहर जाना पड़ता है तिस पर काम मिले या नहीं इसकी क्या गारंटी? उसका बेटा ही नहीं गाँव का हर आदमी इस पक्ष में था। ऐसे तो गाँव खाली होगा नहीं, सरकार को मुआवजा तो देना ही पड़ेगा। गाँव के पंच गिरधारी ने अपनी बात रखते हुए कहा—यही बात तो मैं भी समझाने की कोशिश कर रहा हूँ। ...प्रधान ने भी उसकी बात का समर्थन किया था...मुआवजा तो एक-एक चीज़ का मिलेगा—घर, ग्वायण, खेत-खलिहान, डाल-बूट सभी का। किसके खेत में कितने पेड़ हैं सब गिन कर रखो भाई। फलदार पौधों की क़ीमत अलग मिलेगी। नई जगह पर मकान बनाकर देगी सरकार। पैसा इतना मिलेगा कि कई पीढ़ियाँ बैठ कर खाएँगी। ऐसे में यहाँ धूल मिट्टी फाँकने की जिद्द करना ठीक नहीं है। आजकल खेती करसाणी में क्या रखा है?

प्रधान ने कहा। साल भर सारा टबर जुटा रहे तब कहीं जाकर पेट भरने का ही गुज़ारा होता है। कपड़े-लते के लिए मेहनत मज़दूरी अलग से करनी पड़ती है। सरकार छप्पर फाड़ कर पैसा दे रही है। इससे नया काम धंधा शुरू करो चाहे बैंक में जमा करके उसका ब्याज खाते रहो। जवान लड़के पढ़-लिख कर घर में बेकार पड़े हैं। उनके लिए कोई काम धंधा करो—चाहे ट्रक डालो या फिर जीप-ट्रैक्टर।

सबकी हाँ में हाँ देखकर रूलिया मन मसोस कर रह गया।अपनी ज़मीन जायदाद के प्रति उसके मोह को कोई समझने वाला नहीं था। सबकी आँखें मिलने वाले पैसों की खनक से चुंधियाने लगी थीं। उधर, कुछ दिनों बाद डैम का काम शुरू

हो गया। सामने वाली पहाड़ी पर हाथी से भी बड़ी और ताक़तवर मशीनें दहाड़ने लगीं। प्रोजेक्ट साईट के लिए सड़क का काम शुरू हो गया था। रूलिया ने बचपन में पांडवों के क़िस्से सुन रखे थे जो कि अपने अज्ञातवाश के दौरान रातों-रात बड़े-बड़े काम कर देते थे। एक धार से दूसरी धार के लिए रात के अंधेरे में पुल बनाने का काम हो या किसी पहाड़ी में सुरंग खोदने जैसा पेचिदा कार्य, भोर होने से पहले उसे पूरा करके ही दम लेते थे। मगर कभी-कभी उनके काम भी आधे अधूरे ही रह जाते थे। क्योंकि इतनी देर में सुबह हो जाती। किसी के घर में मधाणी से दही बिलोने या खाँसने तक की आवाज़ सुनते ही पांडव ग़ायब, मानो वे आदमी न होकर छलेडे (भूत प्रेत) हो गए, पल में दिखे पल में ग़ायब। मगर सामने वाली पहाड़ी पर काम करने वाली मशीनें पांडवों की तरह चोरी-छिपे काम नहीं करती। क्योंकि वे अज्ञातवास पर नहीं है। उनके आने से तो हमें ही वनवास मिलेगा। वे तो तब तक यहाँ डटी रहेगी जब तक धार की मिट्टी नदी में पलट कर बांध खड़ा न हो जाए।

काला धुआँ उगलने वाली ये मशीनें दिन भर पहाड़ का दिल दहलाती रहती उधर, उनकी गड़गड़ाहट से रूलिया के मन में तूफान सा उमड़ता। रूलिया सोचता काश ये मशीनें भी वनवासी पांडव बन जाती। एक रात में जो करना हो करे फिर चुपचाप आगे निकल जाए, कहीं और बनाए पुल, सड़कें और डैम। कम से कम उसका गाँव पानी में डूबने से बचेगा। उसे नए सिरे से अपनी दुनिया तो नहीं बसानी पड़ेगी। बुजुर्गों की निशानियों को छोड़ कहीं और नहीं जाना पड़ेगा। इस धरती की गोद में लोट कर ही उसका बचपन बीता है। जिसमें सदियों से उसके पुरखों के गाढ़े पसीने की बूँदें और उनकी भूली-बिसरी स्मृतियाँ जुड़ी हुई है, उसका अपना पसीना भी तो इसी मिट्टी में मिला हुआ है। तभी तो उसे अपने गाँव की मिट्टी की सौंधी महक खींच लाती है। जिस धरती को उसने अपने ख़ून पसीने से सींचा है, वही आज उसके लिए परायी हो गई है। रूलिया को ऐसा लग रहा था मानो उससे ज़मीन नहीं, उसकी माँ की गोद छीनी जा रही है और वह किसी बच्चे की तरह उसमें बैठने के लिए मचल रहा हो।

बेटे ने उसे समझाया भी था—बापू ज़मीन का इतना मोह ठीक नहीं है, किसान का जिणा भी कोई जीणा है? छह महीने खेत में पसीना बहाओ और मौसम का मिजाज बिगड़ा तो फिर वही ढाक के तीन पात...सूप के मुँह से भी दाना निकल जाता है। मगर रूलिया उसके इस तर्क से सहमत नहीं था—गुस्से से उसका तन बदन जल उठा—बहुत बड़ा आदमी हो गया है तू...बड़ी-बड़ी बातें कर लेता है अब। ...पर बेटा ये बात क्यों भूल गया तू कि तेरे अनपढ़ बाप ने इस मिट्टी में अपना पसीना बहाकर तुम भाई-बहनों को पाल पोसकर इस काबिल बनाया है। इस

अनपढ़ करसाण ने ही तुम्हें...पढ़ाया-लिखाया ब्याह-शादियाँ करवाई ...और तुझे तो मैंने अपनी हैसियत के मुताबिक़ सबसे ज़्यादा तालीम दिलवाई है। आज तू ही मेरी हैसियत पर सवाल उठा रहा है? मगर बेटा ये मत भूल किसान खेत में हल जोतता है तो ये उसका कर्म है...जो कर्म करता है वही फल का हकदार भी होता है।

उसने पहले बापू का ऐसा रूप कभी नहीं देखा था। पसीने से तर बतर काँपती हुई उसकी देह को देखकर वह सहम सा गया था। उसे डर था कि कहीं बुड्ढ़ा यहाँ से न जाने की ज़िद्द पर अड़ गया तो सारे किए धरे पर पानी फिर जाएगा। पत्नी व बच्चों के साथ उसने यहाँ से जाने के बाद के जो सपने देख रखे हैं वे टूट कर बिखर जाएँगे। हालांकि वह दृढ़ता से बापू के तर्क का विरोध कर रहा था, फिर भी दिल के एक कोने से आवाज़ आई—बापू जो कुछ कह रहा है वो गलत भी तो नहीं है। बापू का अपनी मिट्टी से जुड़ाव बेवजह तो नहीं है? आख़िर उसने अपनी ज़िंदगी इसी गाँव में गुजारी है। बाहर के राज्य तो दूर, उसने शिमला भी नहीं देखा है।

उसे याद है, बचपन में बापू कहा करता था कि अपनी धरती और अपने गाँव से ही आदमी की पहचान होती है। जगह के नाम से ही लोग अंदाज़ा लगा लेते हैं कि इसकी हैसियत क्या है, इसके संस्कार क्या हैं? तब बापू की ये बातें उसे अटपटी सी लगती थी। मगर आज उसे भी इन बातों का मर्म समझ आने लगा है, उसकी संतान इन बातों को नहीं समझ पाएगी, ठीक उसी तरह जैसे बचपन में वह भी बापू की बातों को हवा में उड़ा देता था। बचपन में वह जब बापू के साथ खेत में जाया करता तो हल चलाते हुए कभी कभार उसे चोट लग जाती। ऐसे में बापू ज़ख़्मों पर दवाई लगाने के बजाय खेत की मिट्टी लगा देता। उसे यह सब देखकर अजीब सा लगता...स्कूल में तो मास्टर यही पढ़ाते थे कि कभी भी घाव पर धूल-मिट्टी नहीं पड़ने देनी चाहिए। मगर बापू के ज़ख़्म पर तो खेत की मिट्टी रामबाण का काम करती। उसी से ही सारे ज़ख़्म ठीक होते रहे हैं मानो उसका शरीर ही मिट्टी का बना हुआ हो। जिसका हर घाव मिट्टी से भर जाता। आज अपनी धरती के प्रति उसका मोह कोई बेमानी तो नहीं था।

प्रोजेक्ट के काम ने ज़ोर पकड़ लिया था। सामने वाली पहाड़ी पर जलाटिन से होने वाले धमाकों से गाँव में मानो भूचाल सा आ जाता! चारों ओर धुआँ और गर्द का गुब्बार सा उठ जाता। घरों में दरारें आ गई थीं, पानी का नौण सूख गया था। लेकिन इस बात का किसी को भी मलाल नहीं था। कुछ ही दिनों की बात है, फिर तो यहाँ से चले जाना है। उधर, दूसरी ओर रातों-रात गाँव के मुहाने पर नए मकान बनने शुरू हो गए थे। गाँव के उजड़ने की प्रक्रिया के बीच यह नई बस्ती क्यों बसने लगी? रूलिया ने प्रधान से यह पूछ ही लिया। तू नहीं समझेगा चाचू ये गोरखधंधा। प्रधान

ने बात टालते हुए कहा था—यह सब पहुँच वालों का खेल है। जिस तरह से तुझे अपनी ज़मीन, घर और डाल बूटे का मुआवजा सरकार देगी। उसी तरह ये लोग भी इन घरों व ज़मीन का मुआवजा सरकार से वसूलेंगे। पटवारी से लेकर बड़े हाकिम तक सब इस गोरख धंधे से लाखों का माल कमाएँगे। अभी तू देखता रह चाचू, कैसे इन लोगों के आगे-पीछे बड़े-बड़े लोग घूमते हैं। एक-एक आदमी के अंगूठे की क़ीमत पड़ेगी।

रूलिया हैरान था कि ये लोग पहले तो कभी यहाँ आए नहीं, मगर जब गाँव उजड़ने लगा तो उस पर रातों-रात बस्तियाँ बसानी शुरू हो गईं। पानी तो यहाँ तक भी आएगा। रूलिया ने काम पर लगे आदमियों से जिज्ञासा वश पूछ लिया। उसकी बात सुनकर सभी ज़ोर से हँस पड़े—तू भी भोले जमाने की बात करता है ताऊ। यहाँ पर कौन रहेगा? पानी में डूबने के लिए ही तो बनाए जा रहे हैं ये घर। यह अलग बात है कि आपके घरों से ज़्यादा मुआवजा मार जाएँगे ये बाबू लोग। घांथू मिस्त्री की रहस्यमयी बातें सीधे साधे रूलिये की समझ से परे थी, पानी के आने के डर से गाँव उजड़ने वाला था। ये कौन लोग हैं जो अनजाने गाँव की ज़मीन पर दिन रात घर बनाने में जुट गए हैं, वो भी काम ठेके पर दे रखा है। रूलिया ने कभी उन लोगों को गाँव में नहीं देखा फिर ये लोग इस डूबते हुए गाँव में बिना नींव वाले कच्ची ईंटों के मकान क्यों बना रहे हैं?

इस रहस्य से पर्दा शाम को उसके बेटे ने ही उठाया था। बापू जो पाँच सात घर यहाँ बन रहे हैं वो बिजली बोर्ड के उन हाकिमों के हैं, जिनकी वजह से इस परियोजना में हमारा गाँव शामिल हुआ है। प्रधान ने उनसे मिलकर ही अपने गाँव को डैम के लिए चुना था, जानते हो क्यों? इससे हमारी ज़मीन की क़ीमत बढ़ गई। उनके इस उपकार के लिए ही तो प्रधान ने गाँव की कुछ ज़मीन इनके नाम करवा दी थी। आख़िर गाँव वालों का फायदा करवाने के लिए इनका भी तो कुछ हिस्सा बनता है न बापू? मगर रूलिया ने उसकी बात पर सहमति जताने के बजाय ठंडी साँस लेते हुए कहा—घोर कलजुग आ गया है बेटा। गाँव उजाड़ने वालों को कैसा ईनाम! उन्हें तो सरेआम जुत्ते मारने चाहिए।

जैसे-जैसे काम आगे बढ़ता गया डैम क्षेत्र में भी सियासी हलचल बढ़ने लगी। हर तीसरे दिन हड़ताल। लाल झंडे वाले कामरेड कभी मज़दूरों की सभा करते तो कभी दूसरे गाँवों के किसानों को लेकर किसी न किसी मुददे पर चक्का जाम कर देते। रूलिया को ये लोग अच्छे लगने लगे थे। उसे मुजारा आंदोलन के वो दिन याद आ गए जब कामरेडों ने गरीब किसानों को ज़मीन का मालिकाना हक़ दिलाने के लिए आंदोलन किया था। चौबीस अड़तालीस के बाद ही सदियों से

मुजारों के रूप में ज़मीन जोत रहे किसानों को शहरी भूस्वामियों के शोषण से मुक्ति मिली थी। कामरेड मज़दूरों और किसानों की बात करते हैं, सबके हक़ के लिए लड़ते हैं। सबसे बड़ी बात वे डरते किसी से नहीं है। उसने निश्चय कर लिया था कि अब अपने मन की बात उनसे ही करेगा।

...और एक दिन रूलिया भी लाल झंडा उठाकर उनके जलसे में शामिल हो गया। नारे लगाते हुए उसकी मुट्ठियाँ अपने आप बंद हो जातीं। न जाने इस उम्र में इतना जोश कहाँ से आ गया था? वह स्वंय भी हैरान था। जलसे में स्थानीय नेताओं के अलावा मंडी और शिमला से भी कामरेड नेता आए थे। ...सब बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे। किसान, मज़दूरों और विस्थापितों की माँगों के लिए बड़े से बड़ा आंदोलन करने से भी नहीं हिचकेंगे और ज़रूरत पड़ी तो बड़ी से बड़ी कुर्बानी भी दे देंगे। उनके जोशीले अंदाज़ पर रूलिया मानो फिदा हो गया था। जब भी लोग तालियाँ बजाते वह भी बजाने लगता। इससे पहले उसने ऐसा कुछ नहीं किया था। यह अलग बात है कि देवी के मंदिर में होने वाले कीर्तन में कभी कभार वह भी तालियाँ बजा लेता था। कभी छींज में अपनी पसंद के पहलवान के जीतने की ख़ुशी में वह उछल कर तालियाँ बजाता था। मगर चुनाव के दिनों में बड़े-बड़े वादे करने वाले नेताओं के भाषण पर भी रूलिया ने कभी तालियाँ नहीं बजाई थी। वह जानता था कि नेताओं के चुनावी वादे कभी पूरे नहीं होते हैं। वोट लेने के बाद कौन किसकी सुध लेता है।

...किसी जलसे में इस तरह से तालियाँ बजाने का उसका यह पहला अनुभव था। पहले तो उसे लगा कि ये कामरेड अवश्य ही डैम बनाने का कार्य रुकवा देंगे मगर उसके मन की बात जलसे में किसी ने नहीं कही थी। किसी ने नहीं कहा कि यहाँ डैम क्यों बन रहा है, कहीं और क्यों नहीं बनता है डैम...हमारा ही इलाक़ा क्यों उजाड़ा जा रहा है? रूलिया उदास हो गया था, कामरेडों से बड़ी उम्मीदें बांध रखी थी उसने। मगर यहाँ भी उसे निराशा ही हाथ लगी। अब तो उसे पूरा यक़ीन हो गया कि उसे यह गाँव छोड़ना ही पड़ेगा, जो वह नहीं चाहता था। जलसे के बाद एक दुबले-पतले दढ़ियल से कामरेड के पास जाकर रूलिया ने अपने मन की बात कह ही डाली थी। ...कामरेड जी आप लोग हमारे लिए लड़ रहे हैं बड़ी अच्छी बात है, पर एक बात तो बताओ। ...बोलो बाबा क्या बात है? बात ये है... रूलिया ने साहस करते हुए कहा...कामरेड जी इन सब मुसीबतों की जड़ तो ये जलया डैम ही है, ये काम बंद नहीं हो सकता है कामरेड जी?

रूलिया की बात सुनकर वह कामरेड सकपका गया था। वह ग़ौर से रूलिया के चेहरे को देखने लगा। कहीं यह बुड्ढा उसका मज़ाक़ तो नहीं उड़ा रहा है?

अगर ऐसा नहीं है तो यह फिर सनकी होगा। कहाँ सब लोग डैम बनने के पक्ष में हैं ताकि उन्हें ज़्यादा पैसा मिले, स्थानीय लोगों को रोज़गार मिले। मगर यह तो डैम बंद करवाने की बात कर रहा है। रूलिया के कंधे पर हाथ रखते हुए उसने कहा—बाबा, अब तो ऐसा होने से रहा। सरकार ने कंपनी से समझौता कर लिया है, काम शुरू हो गया है, देशहित में भी हम ऐसा नहीं कर सकते। हाँ अगर आपको ज़मीन का मुआवजा कम मिला है तो बताओ उसके लिए हम लड़ सकते हैं। वह कामरेड अपने दार्शनिक अंदाज़ में बोले जा रहा था—हम नहीं चाहते कि भाखड़ा व पौंग डैम के विस्थापितों की तरह यहाँ के लोगों का भी हश्र हो। जो उजड़ने के बाद आज तक नहीं बस पाए हैं। इसलिए हम विस्थापितों के हक़ के लिए लड़ रहे हैं। कामरेड की इन बातों से रूलिया की रही-सही उम्मीद भी जाती रही। किसी ने सच्च ही कहा है कि वक़्त बुरा हो तो हर दाँव उलटा पड़ता है।

जलसे से लौटकर रूलिया उदास रहने लगा था। उधर, डैम का काम लगभग पूरा हो गया था। पंद्रह दिन के बाद गाँव खाली कर देना था। लोग अपने घर का सामान गाड़ियों में भर कर अपने नए ठिकानों की ओर ले जाने लगे थे। नई दुनिया बसाने में वक़्त तो लगता है ...किसी तरह अपना मन लगा लेंगे। सरकार ने लोगों से किए वादे के मुताबिक रहने की जगह उन्हें नहीं दी थी। पहाड़ की तराई में नाले के पास छोटे से मैदान में डिब्बे की तरह घर बनाकर दे दिए थे। ...न आगे अपनी जगह थी और न ही पीछे। मगर पैसा तो काफ़ी मिला था। किसी तरह गुज़ारा कर ही लेंगे। धीरे-धीरे यहाँ पर रहने की आदत भी पड़ जाएगी। रूलिया का बेटा भी अपने नए घर में सामान ले जाने लगा था। डाल बूट सब काट दिए थे। वैसे भी पानी में डूब जाने थे। अब बारी घर व गौशालाओं के गिराने की थी। लकड़ी-पत्थर सब गाड़ियों में भरकर ले जाया जा रहा था।

...आख़िर वह दिन भी आया जब रूलिया को भी यहाँ से जाना ही था। नहीं गया तो गाँव के साथ उसकी भी जल समाधि हो जाएगी। ज़िंदा रहने के लिए गाँव का मोह तो छोड़ना ही पड़ेगा फिर जब गाँव ही नहीं रहेगा तो मोह किसका करेगा? गाँव से लगभग सभी परिवार जा चुके थे। डैम भरना शुरू हो गया था। नदी के किनारे की चरागाह सबसे पहले डूबी जहाँ रूलिया बचपन में गाय-भैंस चराने ले जाया करता था। उसके जहन में लड़कपन की कई स्मृतियाँ ताजा हो उठी थीं। अब न तो वह दौर लौटेगा और न ही पानी में डूबी चरागाह दिखाई देगी। सतलुज का पानी लगातार बढ़ता जा रहा था। दो दिन में सारा गाँव जल समाधी ले लेगा। गाँव के सभी घर खाली हो गए थे, घर तो रूलिया का भी खाली हो गया था। मगर उसकी शर्त थी कि वह अंतिम समय तक यहीं रहेगा। जब तक सारा गाँव पानी में

डूब नहीं जाता, वह यहीं रहेगा।

डैम का पानी बढ़ता गया। बारी-बारी गाँव के खेत, घासणियाँ, डाल बूट सब डूबने लगे। लखदाते का थड़ा भी डूब गया, देवी की चरण पादुका, कुल देवता थानी का स्थान, पनघट व नौण सब डूब गए। रूलिये का बेलणा जहाँ कभी देसी गुड़ की महक उठती थी पानी के आगोश में समा गया। रूलिया को लगा कि गाँव से अब उसका रिश्ता सदा के लिए टूट जाएगा।

आज के बाद उसे यह सब देखने को नहीं मिलेगा। सब कुछ पानी में डूबकर इतिहास के पन्नों में सिमट कर रह जाएगा। अब पानी उसके आख़िरी खेत की ओर बढ़ने लगा! इसके साथ ही उसकी बेचैनी भी बढ़ने लगी। वह बेतहाशा उस ओर भागा ...पानी बराबर बढ़ रहा था। गाँव के जो भी दो-चार लोग वहाँ मौजूद थे उन्हें लगा कि कहीं वह पानी में कूद कर आत्महत्या ही न कर बैठे। उसे रोकने के लिए उसके पीछे भागे...रुक जाओ बापू! कहाँ जा रहे हो, आगे पानी गहरा है। उसके बेटे ने पीछे से आवाज़ लगाई। मगर तब तक वह आख़िरी खेत के बीचों बीच पहुँच गया था। वहाँ से आगे जाने के बजाय वह ज़मीन पर झुककर बिलख-बिलख कर रोने लगा। अपनी धरती को आख़िरी प्रणाम कर उसने एक मुट्ठी में खेत की मिट्टी उठाकर जेब से रूमाल निकाल उसमें बांध दी। उसे माथे से लगाकर वह थके क़दमों से वापस लौट गया। मानो वह अपने किसी सगे संबधी का अंतिम संस्कार कर वापस लौट रहा था। गाँव छोड़ कर जाने वाला वह आख़िरी आदमी था...जो अब पीछे मुड़कर कभी नहीं देखेगा। क्योंकि उसकी दुनिया उजड़ चुकी थी...उसे नए सिरे से अपनी दुनिया बसानी थी।

समकालीन भारतीय साहित्य, 2007

ढोल नगाड़ा

शोभा राम ने ढोल पर थाप मारी तो उससे ढम...ढम की ध्वनि निकलने लगी। मगर वह इससे संतुष्ट नहीं हुआ। ढोल की रस्सियाँ कसते हुए वह बड़बड़ाया—इससे और ...गहरी आवाज़ निकलनी चाहिए...तभी तो यह नगाड़े के साथ सही ढंग से जुगलबंदी कर पाएगा। पिछले दो दिनों से वह इसी कोशिश में लगा था...कि ढोल से सही सुर निकले। बकरे की खाल से बने ढोल के पुड़ पर वह कई बार देसी घी और धूप का लेप लगाकर ...आग की हल्की आँच के सामने कर, इसके सुर को साधने का प्रयास कर रहा था।

...शोभा राम ख़ानदानी बजंतरी है। उसके परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी यह कला हस्तांतरित होती रही है। देवता का ढोल, नगाड़ा और शहनाई सदियों से उनके परिवार की विरासत है...देवता की अमानत के रूप में। देवता से जुड़े हर कारज में यह ढोल उसे बजाना पड़ता है...यह उसकी नैतिक जिम्मेदारी भी है। शोभा राम ने बचपन से ही अपने दादू को ढोल-नगाड़ा बजाते हुए देखा। और उसके बाप-दादा ने अपने पूर्वजों की संगत में रह कर न केवल ढोल बजाना सीखा...बल्कि विरासत के रूप में इस कला को सहेज कर रखा...शोभा राम के लिए। यह ढोल अब शोभा राम के गले पड़ गया है।

अब इसे मजबूरी कहें या फिर देवता के प्रति आस्था ...बजंतरियों को देवता के लिए ढोल-नगाड़ा हर हाल में बजाना ही पड़ता है। दादू कहता था कि—देवता और बजंतरियों के बीच अटूट रिश्ता होता है। देवता गाँव वालों की आस्था का केंद्र है तो...बजंतरी देवता की शान हैं। बजंतरियों के बिना देवता एक क़दम भी नहीं चलता है। उसे याद है...कभी दादू कहा करता था कि देवता के इन वाद्ययंत्रों में संगीत नहीं जादू है...जादू। जिसमें पवित्रता है...भक्ति है...और कला की साधना भी। दादू कहता था कि—जब तक बजंतरी बाजा नहीं बजाते, देवता की पूजा नहीं होती...और देवता का गूर भी तभी खेलता है जब ढोल-नगाड़े का स्वर गूँजता है।

वाद्ययंत्रों के ताल पर ही तो देवता झूमता है...नाचता है और झुक-झुक कर आशीर्वाद देता है। तब शोभा राम को लगता कि देवता की शक्ति का मूलमंत्र मानो ढोल-नगाड़ा ही है। ...और दादू इसका प्रमुख किरदार है।

बचपन से ही शोभाराम ने दादू के अंग-संग रह कर ढोल-नगाड़ा, नौपत और शहनाई बजाने का फन सीख लिया था। हालाँकि, सुबह-शाम घर और जंगल में जहाँ कहीं भी शोभा राम को मौक़ा मिलता वह कभी बाँसुरी तो कभी शहनाई की तान छेड़ता रहता। गाँव वाले दूर से ही उसकी शहनाई की आवाज़ पहचान जाते थे। उसे लगता कि उसकी बाँसुरी और शहनाई के स्वरों के साथ ताल मिलाते हुए देवदार के पेड़ डोल रहे हैं...झरनों का संगीत उसके साज के साथ संगत करने लगा हो...पंछियों की चहचहाट के संग मानो प्रकृति भी उसके संग गाने लगी हो।

उसका दादू दिल्लू हेस्सी ग़ज़ब का कलाकार था। ढोल-नगाड़े के अलावा वह नौपत और शहनाई बजाने में माहिर था। ...सात कोस तक भी उसकी टक्कर का कोई दूसरा बजंतरी नहीं था। लोक नाट्य बांठड़ा के स्वाँग उसके नगाड़-खाने के बिना जम नहीं पाते थे। सिर पर तुर्रेदार प्याजी रंग की पगड़ी बांधे जब वह—हरिरंग लागा साधो...या फिर ...माले आबे सुहावणिये माले...की तान छेड़ता तो पूरे पंडाल में जैसे समाँ बंध जाता और स्वाँग करने वाले स्वाँगियों के पाँव बिजली की गति से थिरकने लगते। लोग कहते हैं कि अगर आज कहीं दिल्लू हेस्सी ज़िंदा होता तो वह भी उस्ताद बिसमिला खाँ की टक्कर का कलाकार होता। मगर अपने यहाँ तो किसी ने जीते जी उसकी कला की कद्र नहीं की। दादू के कुछ गुण तो शोभा राम में भी थे। दादू की संगत में रह कर ही उसने सब साज बजाना सीख लिये थे। वह भी अपने दादू की तरह ख़ुद को महज बजंतरी ही नहीं बल्कि लोक कलाकार मानता था।

दादू कहा करता था—बजंतरी केवल मरी भैंस का चमड़ा कूटने वाला नहीं होता है...वह तो भई कलाकार होता है। उसके साज से निकलने वाला संगीत ही तो पहाड़ के जीवन की धड़कन है। इसके बिना तो यहाँ की ज़िंदगी ठहर जाएगी। वह कहता—ढोल की थाप पर देवता झूमते हैं...लोग नाटी नाचते हैं...खेतों में सामूहिक कार्य करते हैं ...तो थकान का पता ही नहीं चलता है। ...शोभा राम को लगता जैसे संगीत ही पहाड़ के लोगों का जीवन है...यहाँ की हवाओं में वनफूलों की महक है...झरनों में संगीत ...नदियों में ताल और घाटियों में लोकगीतों के स्वर गूँजते हैं। इसके बिना कैसा होगा यहाँ का जीवन? यह सवाल उसके मन में बार-बार दस्तक देता रहता।

शोभा राम ने ढोल पर आख़िरी बार थाप दी...ढम्म...ढम्म। इस बार वह कुछ

संतुष्ट हुआ। जैसी वह चाहता था...ढोल से वैसी ही ध्वनि निकल रही थी। अब मेले में सौ नगाड़े भी उसके ढोल की आवाज़ को नहीं दबा पाएँगे। मेले में निकलने वाली माधोराय की जलेब में उनके देवता का बाजा सबसे अलग ही होगा। अब तक शोभा राम की घरवाली बिमला उसका पिट्ठू तैयार कर लाई थी।

—कितने दिन लगेंगे देवता के साथ? उसने पिट्ठू उसके सामने लगभग पटकते हुए कहा था।

—यही कोई दस-बारह दिन तो लग ही जाएँगे। शोभा राम ने उसके गुस्से को भाँप लिया था—बापू की तबीयत ठीक होती तो मैं तुझे भी मेले में साथ ले चलता।...पर मजबूरी है...जाना तो पड़ेगा ही...देवता की तो चाकरी करनी ही पड़ेगी।

—क्या मिलता है देवता की चाकरी में। बिमला का स्वर तीखा हो गया था—घर में बाप मर रहा है...दवा-दारू के लिए एक धेला नहीं है और तुझे देवता के साथ जाने की पड़ी है...अबकी बार अगर देवता के साथ नहीं जाएगा तो पहाड़ नहीं टूट पड़ेगा। सौ बार कहा है कि छोड़ दे यह बजंतरीपणा...हम दोनों मिलकर मेहनत-मजूरी करेंगे तो चार पैसे मिलेंगे घर चलाने के लिए...पर मेरी सुनता कौन है।

शोभा राम जानता था कि इस समय पत्नी के मुँह लगना रिंघल की हांडी को छेड़ने के समान है...एक बार यह शुरू हो गई तो पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा। हाँ...उसके जाने के बाद वह सब कुछ सम्भाल लेगी। बापू की बीमारी की चिंता उसे भी थी। मगर जबसे देवता के गूर ने दाणे देख कर कहा था कि—शोभा! राम तेरे बापू को ओपरी झपट है...धूणी देने से ठीक हो जाएगी। ...उसे विश्वास था कि देवता की कृपा से उसका बाप भला-चंगा हो जाएगा। उसने बापू की बीमारी की आड़ में बिमला को भी अपने साथ मेले में चलने को तो कह दिया था। मगर वह जानता था कि बजंतरियों का कोई ठौर-ठिकाना नहीं होता। मेले में उनके ठहरने का कोई भी इंतजाम नहीं होता...रात खुले में घयाने के पास कटती है या फिर ठंड में ठिठुरते हुए किसी के बरामदे में। ...कोई उन्हें कमरे में तो ठहराने से रहा। वहाँ तो केवल देवता और कारदार ही ठहर सकते हैं...बजंतरी नहीं। बजंतरी देवता से छू नहीं सकते...उनके छूने से देवता अपवित्र हो जाएगा...ऐसा देवता के कारदार कहते हैं—यह देव समाज की व्यवस्था है। जो सदियों से चली आ रही है। इस प्रथा को तोड़ा नहीं जा सकता है।

...उसे बचपन से ही यह अहसास करवाया गया था कि...वे बजंतरी हैं...दलित हैं...अछूत हैं और साथ में अपवित्र भी। इतने अपवित्र कि उनके छूने मात्र से ही देवता अपवित्र हो जाए। हाँ...यह अलग बात है कि देवता के साथ बजंतरियों को

खाने-पीने की कोई कमी नहीं होती।

...वह तो बचपन से ही ऐसी देऊलियों का अभ्यस्त था। उसने कई रातें ठंड में ठिठुरते हुए काटी थी। पहली बार वह देवता के साथ पंचायत के प्रधान के घर देऊली पर गया था। प्रधानगी का चुनाव जीतने पर उसने तीन-चार देवताओं को आमंत्रित किया था। हर देवता के नाम पर तीन-तीन बकरे काटे थे। देवता को दी जाने वाली बलि के दौरान बकरे की मुंडी पुजारी को दी जाती...और एक बाहू बजंतरियों को दिया जाता। यह देव समाज की व्यवस्था का हिस्सा था। सबकी देवता के प्रति अपनी-अपनी जिम्मेदारी है और अलग हिस्सेदारी भी। उसके दादू के हिस्से में भी बकरे की एक टाँग आई थी...जिसे उसने कपड़े में लपेट कर अपने झोले में सुरक्षित डाल दिया था। इसे घर ले जाकर पकाया जाना था।

...प्रधान के घर का आँगन लहू से लाल हो गया था। बाक़ी सब लोग तो ढोल-नगाड़ों की तान पर खुले खेत में नाटी डाल रहे थे। मगर शोभाराम खेत की मेढ़ पर खड़ा होकर उन लोगों को देख रहा था। ...जो देवताओं की धाम के लिए मांस का इंतजाम करने में जुटे हुए थे। पहले उन लोगों ने बारी-बारी कटे हुए बकरों को उल्टा लटका कर उनकी खाल उतारी...फिर अंतड़ियाँ और मांस अलग कर दिया गया। कटे हुए बकरों के मांस के ढेर आँगन में लग गया था।

...मांस-भात की लालसा से ही वह दादू के साथ देऊली में आया था। मगर धाम तैयार होते-होते अधराता हो गया था। सब लोग ख़ुश थे। कुछ लोग घयाने के पास आग सेंकते हुए गप्पें मार रहे थे...तो कोई नाटी नाच रहे थे। उसका दादू और दूसरे बजंतरी प्रधान द्वारा दी गई देसी शराब की कैन से शराब गटक रहे थे। वे सब इसी में मस्त थे। मगर शोभा राम एक कोने में बैठा ठंड से ठिठुर रहा था। मारे भूख के उसके पेट में ऐंठन हो रही थी। मगर जब तक उच्च जाति के लोग धाम खाकर डकार नहीं ले लेते, तब तक भला बजंतरियों को कौन पूछने वाला था? प्रधान के आँगन, बरामदे और कमरों में लोग पंगत में बैठ कर मांस-भात का मज़ा ले रहे थे। और गोशाला में शराब के नशे में मस्त होकर गीत गाते बजंतरियों के बीच शोभा राम भात खाने के बुलावे का इंतज़ार कर रहा था। मांस-भात के चाव में ही तो वह दादू के साथ यहाँ आया था।

आख़िर में जब...सारे लोग खा बैठे तो बजंतरियों का भी बुलावा आ गया। प्रधान के घर के पिछवाड़े में ही उनके बैठने की व्यवस्था की गई थी। रसोई से पहले ही भात का टोकरा भर कर लाया गया था। अब तक वह भी ठंडा हो गया था। बजंतरियों को खाना बाँटने के लिए भी अलग लोग लगे हुए थे। धोती वाले पंडित उन्हें खाना नहीं परोसते। ठंडा भात शोभा राम के गले में अटक रहा था...मांस

की तरी के साथ जैसे-तैसे खाना हलक से नीचे उतरा था। वहीं बीच-बीच में खाना बाँटने वाले गर्म-गर्म मांस की कड़छी डाल जाते तो उसे लगता कि उसका धाम में आना सार्थक हो गया...इससे पहले कि तेज़ हवा से खाना ठंडा हो जाए...वह जल्दी-जल्दी खाने पर टूट पड़ा था। धाम का मांस-भात खाकर वह जैसे तृप्त हो गया था। खाना खाने के बाद वह देर तक आग के घयाने के पास बैठा मांस-भात के स्वाद को महसूस कर इसे अपनी स्मृति का हिस्सा बनाना चाहता था...देवता के साथ ऐसी धाम रोज़-रोज़ खाने को थोड़े मिलती है।

दादू की मौत के बाद उसके बापू ने देवता की चाकरी की। मगर बापू बीमारी की वजह से ज़्यादा चल-फिर नहीं सकता था। इसलिए अब यह जिम्मेदारी शोभा राम की थी। शोभा राम को भी देवता की चाकरी से कोई ऐतराज नहीं था...ऐतराज था तो बस इतना कि बजंतरियों के साथ पशुओं सा बर्ताव क्यों किया जाता है? देवता के प्रति उसकी अटूट आस्था...में मन में गहरी श्रद्धा थी। उसका मानना था कि देवता पहाड़ के समाज की एकता का सूत्रधार है। देवता के नाम पर हज़ारों लोग एकजुट होकर अनुशासन की डोर में बंध जाते हैं...देवता है तो समाज में मेल मिलाप है...देवता के बिना यह सब ख़त्म ही समझो। ...फिर तो आदमी और मशीन में क्या फ़र्क़ रह जाएगा। और मशीन कभी ढोल-नगाड़े की तान पर नाचती-गाती नहीं है।

वैसे भी ढोल-नगाड़े के प्रति शोभाराम का विशेष लगाव था। यह सब दादू की संगत और उसकी बातों की वजह था। कभी-कभी उसका दादू उसे मंडी रियासत के प्रतापी राजा सिद्धसेन के जादूई नगाड़े का क़िस्सा सुनाया करता था। जिसे सुनकर वह रोमांचित हो उठता था...उसे लगता कि काश उसके ढोल-नगाड़े में भी ऐसी जादूई शक्ति आ जाए तो वह कला की दुनिया का बादशाह बन जाए। उसका दादू कहता—क्या ग़ज़ब का था वह राजा भी...जैसा नाम था...वैसा ही उसका काम भी। महाभारत के भीमसेन की तरह विशालकाय और बलशाली...कई तरह की सिद्धियाँ हासिल कर रखी थीं उसने। दादू फ़ुर्सत के क्षणों में अक्सर यह क़िस्सा सुनाया करता था—राजा सिद्धसेन पहुँचा हुआ जादूगर था...एक बार उसने सारे हिंदुस्तान से जादूगरों को बुलाकर अपनी कला का जौहर दिखाने के लिए जादूगरी का मुक़ाबला करवाया था। ...और...ख़ुद भी उसमें हिस्सा लेकर सारे जादूगरों को हरा दिया था।

शोभा राम इस क़िस्से को बड़े चाव से सुनता था—फिर क्या हुआ था दादू? वह बाल सुलभ उत्सुक्ता से पूछ बैठता था।

—होना क्या था...हारे हुए जादूगर चले गए कुल्लू के राजा की शरण में ...और सबने मिलकर अपनी जादूई शक्ति से एक नगाड़ा तैयार किया...जिसकी आवाज़ सुनते ही दुश्मन की सेना के हौंसले पस्त हो जाते। कुल्लू के राजा ने इस नगाड़े को लेकर मंडी रियासत पर हमला कर दिया। नगाड़े की आवाज़ से एक बार तो राजा सिद्ध सेन भी घबरा गया...पर उसके सेनापति वीरसिंह ने राजा की हिम्मत बढ़ाइ, वह बोला—महाराज डरने से तो लड़कर मरना बेहतर है...आप युद्ध का ऐलान करो। जीत हमारी ही होगी। बस फिर क्या था! सिद्धसेन की तोपों की आवाज़ के आगे नगाड़े की आवाज़ दब गई और मंडी का राजा जीत गया। शोभा राम दादू के मुँह से मंडी के राजा की जीत की बात सुन कर ज़ोर से ताली बजाने लगता...मानो इस घटना को वह स्वयं देख रहा हो। ...मगर नगाड़े की महिमा यहीं ख़त्म नहीं होती।

उसका दादू कहता कि—सिद्धसेन के उस नगाड़े को हमारा ही कोई बुजुर्ग बजाता था...उस नगाड़े के बल पर सिद्धसेन ने कितनी ही लड़ाइयाँ जीत ली थी। कितने ही नरमुंडों की मालाएँ बाबा भूतनाथ को अर्पित की थी। मगर ...फिर राजा ने विचार किया कि इससे तो प्रलय हो जाएगा। विधाता की बनाई हुई सृष्टि का खेल बिगड़ जाएगा...इससे पहले कि यह नगाड़ा किसी गलत हाथों में पड़े...वह उस जादूई नगाड़े को गंगा सागर में फेंक आया था।

...मगर शोभा राम को लगता जैसे वह नगाड़ा तो उसके ही पास है। हो सकता है ..उसके बुजुर्ग ने राजा को गंगासागर में फेंकने के लिए बदल कर कोई दूसरा ही नगाड़ा दिया होगा...राजा लोगों को नगाड़े की क्या पहचान...यह तो बजाने वाला ही जानता है...कि कौन साज कैसा है? तभी तो वह अपने साज से लोगों के दिलों को जीतता है। लोग उसकी कला की इतनी तारीफ करते हैं। मगर उसकी घरवाली बिमला को उसका बजंतरी बनना अच्छा नहीं लगता है...हरदम यही रट लगाए रहती है कि मेहनत-मजूरी कर और टब्बर पाल। जैसे वह इसी काम के लिए पैदा हुआ है। ...पर वह भी तो अपनी जगह पर सही है...बजंतरीपणे से तो परिवार का गुजारा होता नहीं है। ...साल में दो बार गाँव वाले जो थोड़ा बहुत अनाज देते थे...उससे मुश्किल से दो तीन महीने का ही गुजारा होता है। थोड़ा बहुत अनाज वह चैत्र महीने में घर-घर छींजें गाकर भी इकट्ठा कर लेता था। उसकी शहनाई की आवाज़ सुन कर खेतों में काम करने वाली महिलाएँ भी काम छोड़ कर उसके पास आ बैठतीं और फरमाइश करने लगतीं—ओये शोभेया मरूआ पंज पतरा सुणा।

और शोभा राम...अपनी शहनाई पर तान छेड़ देता...

—बारही ता बरसे ओ कंत घर आया...जी कंत घर आया, हो जाई बैठेया

मरूए री छाँव। मरूआ हो पंज पतरा मेरी जान।

शोभा राम की शहनाई के साथ महिलाओं के समवेत स्वरों से खेत ...खलिहान...और घाटियाँ गूँज उठती। खेतों में काम करने वाली महिलाएँ उसे आशीष देती—जिऊंदा रह शोभेया तू...जुग-जुग जिये तू और तेरी शहनाई हर साल हम सुनते रहें। मगर ज़िंदा रहने के लिए पेट में रोटी भी तो चाहिए।

उसके ढोल-नगाड़े व शहनाई के कद्रदान भी बहुत हैं। शिवरात्रि के मेले में कई लोग उसके वाद्य यंत्रों के बारे में जानकारी हासिल करते हैं...उससे तरह-तरह के सवाल पूछते हैं...उसकी शहनाई की रिकार्डिंग करते हैं...तब उसे लगता कि उसका बजंतरी बनना अकार्थ नहीं गया। वह भी एक कलाकार है...कलाकार शोभाराम।

बजंतरियों के हक़ की लड़ाई लड़ने वाला पुरषोतम ठाकुर भी शोभाराम का प्रशंसक था। जब वह कहता कि—शोभा राम तू केवल देवता का बजंतरी नहीं...बल्कि बहुत बड़ा कलाकार है...कलाकार...देवता के ये साज तेरी ऊँगलियों के गुलाम हैं। मैं चाहता हूँ देवता और बजंतरियों की यह परंपरा आगे भी चलती रहे...यह हमारी पहाड़ की जीवंत संस्कृति का हिस्सा है। वह कहता कि—बजंतरियों को भी कलाकार का दर्जा मिलना चाहिए...जिससे आप लोगों को रोज़ी-रोटी के लिए कोई और काम-धंधा न करना पड़े। शोभा राम को लगा अगर ऐसा हो जाए तो वह दिन-रात अपने साजों में ही खोया रहेगा...औरों को भी अपनी यह कला सीखाएगा...तब तो अपने बेटे को भी वह बड़ा कलाकार बनाएगा...फिर उसे बिमला के ताने नहीं सुनने पड़ेंगे। उसने पुरषोतम से पूछा—ठाकुर साहब कहीं यह सपना तो नहीं है।

—सपना...कैसी बात करता है शोभा राम तू भी। पुरषोतम ने कहा—अपना हक़ माँगना कहीं कोई सपना थोड़े है...और फिर सरकार चाहे तो क्या नहीं हो सकता। हाँ...सपने की ख़ूब याद दिलाई ...दो दिन पहले मैंने भी एक सपना देखा है...यह मेरी ज़िंदगी का पहला सपना है...शायद। वैसे मैंने बंद आँखों से कभी सपने नहीं देखे हैं।

पुरषोतम जैसे अपने उस सपने में खोने सा लगा था—उस रोज़ सपने में मुझे पहाड़ी की टेकरी पर देवताओं के रथ दिखाई दिए...क्या ख़ूब सजे हुए...जैसे अभी-अभी स्वर्ग से उतरे हों...मगर यह क्या...देवता के रथ आगे नहीं बढ़ रहे थे...एक जगह पर अड़ गए थे...गूर ...कारदार...पुजारी सब लोग देवता को मनाने की कोशिश कर रहे थे...मगर देवता के रथ आगे बढ़ने के बजाय पीछे की ओर हट रहे थे.। देवताओं को उठाने वाले जमाणियों के ठंड में भी पसीने निकल रहे थे...उनके कंधे दुखने लगे थे...पर देवता नहीं माने। और मैं...उससे थोड़ा नीचे खड़ा था...देवताओं

से मेरा भी संवाद जारी था...देवता कहने लगे—हम मेले में नहीं जाएँगे...वहाँ छूँहछेड़ होती है। हमारी पवित्रता ख़त्म हो जाएगी।

शोभा राम ने उत्सुकतावश पूछा—फिर क्या हुआ ठाकर जी।

—होना क्या था...शोभाराम...मैं भी अड़ गया। पुरषोतम बोला—मैंने भी कह दिया मैं तुम्हारी बात नहीं मानता...जब सब आदमी एक समान हैं तो छूँहछेड़ कैसी? सब लोग आपकी पूजा करतें हैं...आपके लिए तो सभी एक समान हैं।

—अच्छा...फिर। शोभा राम की उत्सुकता और बढ़ने लगी।

—भाई शोभाराम देवता तो देवता हैं...ये सारे भेदभाव तो आदमी के बनाए हुए हैं...देवताओं का इससे कुछ भी लेना-देना नहीं है। बस। फिर क्या, देवता मेरी बात मान गए और मेले के लिए चल पड़े...अब देखना देवताओं के आशीर्वाद से हमारी यह माँग भी पूरी हो जाएगी ...मुझे ऐसा लगता है।

शोभा राम ख़ुश होकर कहने लगा—ठाकर जी आप तो बड़े आदमी हैं...देवता करे आपका सुपना सच्च हो जाए...तो हमारा जीणा भी सार्थक हो जाए। शोभा राम को पुरषोतम भला आदमी लगा...ऊँची जाति का होकर भी बजंतरियों की हिमायत करता है। उसने अपने दूसरे साथियों से भी उसे मिलाया...बजंतरियों के हक़ के लिए एकजुट होकर लड़ने की रणनीति भी बनाई गई।

...इधर, कारदार कमेटी को बजंतरियों के लामबंद होने की भनक लग गई थी। बजंतरियों की एकजुटता उनके लिए किसी बगावत से कम नहीं थी। यह तो सीधे-सीधे देव-सत्ता को चुनौती थी। कारदारों ने इसे अपनी प्रतिष्ठा का सवाल बनाते हुए सदियों से चली आ रही परंपराओं का अपमान माना। इस मुद्दे पर बजंतरियों से बात करने का निर्णय लिया। कारदारों ने बजंतरियों को देवता के कोप का डर दिखाया और यह भी कहा कि मेले के बाद तो वापस अपने-अपने गाँव में जाना है...वहाँ की सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच उन्हें रहना होगा। कारदारों को यह भी भय सताने लगा कि ...अगर प्रशासन ने बजंतरियों की बात मान ली तो परेशानी होगी...उनका घर-गाँव में रहना मुश्किल हो जाएगा...फिर तो हर बात पर पैसे की माँग करने लगेंगे ये लोग ...आग की तरह इनका पेट तो कभी भरने वाला नहीं है...जितना दो सब भस्म फिर और चाहिए।

बुजुर्गों ने सही कहा है कि—आग की तरह इनका पेट भी खाली रहे तभी काम ठीक करते हैं। ऐसे में देवता के कारज कैसे चल पाएँगे...सदियों से चली आ रही परंपराओं को कुछ लोगों के कहने पर कैसे तोड़ा जा सकता है? ऐसे तो समाज में विघटन हो जाएगा। बैठक में सबकी चिंता इसी बात को लेकर थी।

कारदार कमेटी के अध्यक्ष ने कहा—बजंतरी भी देव समाज का ही हिस्सा

हैं...देवता है...तभी तो बजंतरी हैं। देवता के लिए ढोल-नगाड़ा बजाना इनकी ड्यूटी है। किसी पर एहसान नहीं करते हैं ये लोग। यह तो श्रद्धा का मामला है भाई...फिर देवता की भी अपनी एक व्यवस्था होती है...जिसमें गूर, पुजारी, कटवाल, कारदार और देवता को उठाने वाले जमाणी भी शामिल हैं...इन्हें भी अलग न माना जाए।

वह बोला—अगर बजंतरियों को अलग से कुछ दिया गया, तो दूसरे लोग भी मेला कमेटी से पैसे की माँग करेंगे। और फिर इन लोगों को अलग से कुछ देने से सदियों से चली आ रही व्यवस्था बिगड़ जाएगी। उसकी बात का समर्थन कारदारों ने तालियाँ बजाकर किया।

शोभा राम इस बात से क्षुब्ध था। वह बोला—कारदारों को बजंतरियों का विरोध करने की क्या ज़रूरत है। क्या हम लोग कलाकार नहीं हैं? देवता के लिए ढोल-नगाड़ा बजाने से हमारी कला का महत्त्व नहीं होता। लोक कलाकार के रूप में हमें हक़ तो मिलना ही चाहिए।

उसकी बात का समर्थन पुरषोतम ने भी किया—कई सालों के रियाज के बाद ही तो एक अच्छा बजंतरी बनता है...मगर उसे तो आप लोग जानवर से ज़्यादा कुछ नहीं समझते। अगर ऐसा ही होता रहा तो एक दिन लोक-कलाकार नहीं रहेंगे...कोई नहीं बजाएगा...ढोल-नगाड़ा...शहनाई और बाँसुरी के स्वर सुनने को कान तरस जाएँगे...ऐसे में तो हमारी संस्कृति ही ख़त्म हो जाएगी...आने वाली पीढ़ियों के लिए हम क्या छोड़ जाएँगे। फिर अपने ही गले में ढोल डाल कर बजाते रहना तुम सब लोग।

उसने शोभा राम की पीठ थपथपाते हुए कहा—दिल छोटा न करो...हक़ की लड़ाई के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ता है...जीत उसी की होती है...जो अपनी लड़ाई ख़ुद लड़ता है। और फिर अगर हक़ माँग कर नहीं मिले तो छीन कर भी हासिल किया जाता है।

शोभा राम ने निराशा भरे स्वर में कहा—पर यहाँ हमारी सुनेगा कौन? जब देवता के कारदार ही हमारे विरोध में खड़े हो गए हैं, तो फिर और किससे उम्मीद करें?

—अब तुम इस लड़ाई में अकेले नहीं हो, मैं भी तुम्हारे साथ हूँ। पुरषोतम ने उसे दिलासा दिया—अब हमें अपनी आवाज़ बुलंद करनी होगी...समाज और व्यवस्था के बहरे कानों तक ढोल-नगाड़ों की गूँज पहुँचानी होगी।

शहर के कई बुद्धिजीवी, रंगकर्मी, कलाकार और शोधार्थी भी बजंतरियों के पक्ष में आ गए थे। इनमें कई बौद्धिक सवाल खड़े करने लगे...संस्कृति और देव

समाज की परंपराओं की गहन विवेचना होने लगी। जिसमें देव समाज की रूढ़ियों...अंधविश्वासों और छुआछूत पर भी प्रहार होने लगे। कोई कहता—देवता अगर इतने ही शक्तिशाली हैं तो वे ख़ुद चल कर क्यों नहीं आते...उन्हें कंधों पर उठाने की क्या ज़रूरत है ?

कोई कहता—देवता के लिए बाजा बजाने की ज़रूरत ही क्या है ? जब तक देवता रहेंगे बजंतरियों का शोषण होता रहेगा...इनके गले में ढोल-नगाड़ा पड़ा रहेगा...ऐसे में तो देवता लोगों की आस्था के बजाय शोषण का प्रतीक ज़्यादा बनता जा रहा है...देव परंपरा के नाम पर इन आदिम प्रथाओं का अब अंत होना चाहिए ...जो आदमी को आदमी न समझ कर पशु तुल्य बना रही है...इससे तो बेहतर है कि देव प्रथा ही समाप्त हो जाए।

मगर शोभाराम इन सबकी बातों से पूरी तरह से सहमत नहीं था। उसे लगा कि इन लोगों को भले ही हमारे साथ सहानुभूति है...लेकिन ये शहरी बाबू लोग हमारे जीवन और संस्कृति के बारे नहीं जानते हैं। उसने पुरषोतम से अपने मन की शंका जताई—ठाकुर जी भले ही देव परंपराओ में रूढ़ियाँ और अंधविश्वास हैं। मगर हमारे ग्रामीण समाज की आस्था का केंद्र तो देवता ही है...हमारे सुख-दुःख का साथी देवता ही होता है। हमारी लड़ाई भी देवता से नहीं...उस व्यवस्था से है...जो बजंतरियों का शोषण करती है। पुरषोतम ने कहा—सवाल केवल देवता और बजंतरियों का नहीं है। असली मुद्दा तो लोक कला और संस्कृति के संरक्षण ...और मानवता का है। दुनिया की जितनी भी प्राचीन सभ्यताएँ और आदिम जनजातियाँ हैं। लोक वाद्य हर समाज की ज़िंदगी का हिस्सा रहे हैं...वो दक्षिण अफ्रीका के आदिम कबीले हों चाहे अरब और मंगोल कबीले—सभी में लोकवाद्यों की धुन पर लोक संगीत की स्वर लहरियाँ गूँजती है। लोक संगीत मानवीय सभ्यताओं का आधार रहा है और आज भी हैं।

पुरषोतम ने अपने तर्कों से बजंतरियों को न केवल प्रभावित किया था बल्कि, उन्हें अपने हक़ की लड़ाई लड़ने के लिए लामबंद भी कर लिया था। शोभाराम तो ठाकुर साहब के किरदार से पहले ही प्रभावित था। ऊँची जाति का होकर भी कारदारों का साथ छोड़ कर छोटी जाति के बजंतरियों के साथ बैठकर उनके हक़ की बात करता है...ढोल-नगाड़ा बजाने को छोटा काम न मानकर इसे लोक कला का दर्जा दिलाने के लिए संघर्ष कर रहा है...हमें भी ठाकर साहब का साथ देना चाहिए।

इधर, प्रशासन के कानों तक भी बजंतरियों के लामबंद होने की बात पहुँच गई थी। कारदार कमेटी के माध्यम से लगातार बजंतरियों पर दबाव पड़ रहा था...शोभाराम और पुरषोतम को देव समाज का विरोधी माना जाने लगा...उनकी इस

मुहीम को देव परंपराओं के ख़िलाफ़ माना गया। देवता इनसे ख़ुद निपटेंगे। दोनों को देवद्रोह का शाप भुगतना पड़ेगा।

मगर शोभाराम व पुरषोतम तो बजंतरियों को अपने हक़ की लड़ाई के लिए तैयार कर रहे थे। इसमें देवता से बगावत की बात नहीं थी। पुरषोतम बार-बार यह बात समझाने का प्रयास कर रहा था कि—हम देवताओं का नज़राना बढ़ाने का विरोध नहीं कर रहे हैं। हमें तो इस बात का ऐतराज है कि मेले में लाखों रुपए मुंबइया कलाकारों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर ख़र्च कर दिए जाते हैं। जो सही मायने में लोक संस्कृति के संवाहक हैं...जो सदियों से देवता के वाद्ययंत्रों को बजा रहे हैं उन बजतंरियों को भी लोक कलाकार माना जाए...

मेले के समापन पर मुख्यमंत्री आने वाले थे...तय हुआ कि बजंतरी अपना माँगपत्र मुख्यमंत्री को सौपेंगे। इससे पहले सारे बजंतरी ढोल-नगाड़ों के साथ जुलूस निकाल कर बाज़ार का चक्कर लगाएँगे और व्यवस्था के बहरे कानों तक अपनी आवाज़ पहुँचाएँगे।

शोभा राम और पुरषोतम की योजना के अनुसार क़रीब तीन सौ बजंतरी मेला मैदान में इकट्ठे हुए। सबके गले में ढोल-नगाड़े थे...सारे वाद्ययंत्र एक साथ बजने से शहर गुंजायमान हो उठा। शहर के लोग यह सब देख कर हैरान थे...यह कैसी जलेब है...न कोई देवता...न माधोराय की पालकी...पुलिस और होमगार्ड के जवान भी नहीं...न पगड़ी वाले नेता, न मंत्री...और न संतरी। ...सिर्फ़ हैं तो केवल बजंतरी ही बजंतरी। और साथ में हैं ढोल...नगाड़े...शहनाई और करनाल। ढोल-नगाड़ा बजाते सैकड़ों बजतंरियों का यह जुलूस शहर के इतिहास की अद्भुत घटना थी। ढोल-नगाड़ा बजाते बजंतरियों का यह प्रतिरोध...व्यवस्था और समाज के बहरे कानों तक अपनी आवाज़ पहुँचाने का प्रयास था। ...शोभाराम को लग रहा था कि उसके गले में पड़ा ढोल...राजा सिद्धसेन का वह जादूई नगाड़ा है...जिसकी ध्वनि से युद्धक्षेत्र में दुश्मन सैनिक पस्त हो जाते थे। अब उसकी ध्वनि भी विजयघोष में बदल जाएगी।

मगर जैसे ही बजंतरियों का यह जुलूस डीसी आफ़िस के अहाते में प्रविष्ट हुआ...सैकड़ों पुलिस वालों ने उन्हें घेरे में ले लिया। उनके हाथों में लंबे-लंबे डंडे थे...सिर पर टोप पहने वे बड़े डरावने से लग रहे थे। लाठीचार्ज के आदेश का इंतज़ार करते पुलिस वाले अपनी पोजिशन ले चुके थे। बजंतरियों के बीच शोभाराम अपने ढोल को ज़ोर-ज़ोर से बजाने लगा...उसे लगा कि उसके ढोल की आवाज़ से पुलिस का घेरा टूट जाएगा...और वे सब मुख्यमंत्री तक पहुँच जाएँगे। उन्हें मुख्यमंत्री से अपनी बात ही तो कहनी है। मगर यह क्या...पुलिस का घेरा और बढ़ने

लगा...उनके हाथों में लाठियाँ ...सिर पर टोप और हाथ में बैंत की ढाल जैसा कुछ थामें हुए थे। उन्हें देखते ही बजंतरियों के चेहरे भी पीले पड़ने लगे थे...ऐसी स्थिति उनकी ज़िंदगी में पहली बार आई थी। वरना मंत्री हो या मुख्यमंत्री सबके स्वागत के लिए ही उन्होंने ढोल-नगाड़ा बजाया था।

अब मुख्यमंत्री के आने का समय हो गया था। पुलिस का घेरा और कसता जा रहा था। शोभाराम को अब भी अपने जादुई ढोल पर विश्वास था...बजंतरियों के बीच खड़े होकर उसने ज़ोर-ज़ोर से ढोल बजाना शुरू कर दिया...उसकी देखा-देखी उसके साथी बजंतरी भी अपने वाद्ययंत्र बजाने लगे...वाद्ययंत्रों का यह सामूहिक शोर...युद्ध के उद्‌घोष जैसा था। पुरषोत्तम लगातार पुलिस वालों से बहस कर रहा था...वह बजंतरियों का माँगपत्र मुख्यमंत्री तक पहुँचाने की बात कर रहा था...मगर पुलिस वाले कानून व्यवस्था का हवाला देकर उसे ऐसा करने से मना कर रहे थे। आख़िरकार तय रणनीति के अनुसार पुरषोत्तम ने बजंतरियों को आगे बढ़ने का इशारा किया...और शोभा राम ढोल को बजाते हुए सबसे पहले पुलिस के घेरे को तोड़ने के लिए आगे बढ़ने लगा...उसके पीछे अपने-अपने ढोल-नगाड़े लिए बजंतरी भी दौड़ पड़े। मगर देखते ही देखते पुलिस की लाठियों का कहर उन पर टूट पड़ा। ढोल कहीं गिरे, नगाड़े कहीं। पुलिस की लाठियों से किसी का सिर फुटा...तो धमाके के साथ किसी का ढोल फट गया।

किसी बड़े तूफान के बाद हुई तबाही जैसा मंजर था यह। बजंतरियों की कराहों...चीख़ों और ज़मीन पर बिखरे वाद्ययंत्रों के बीच पुलिस के बूटों तले रौंदी गई बजंतरियों की टोपियाँ...सदियों पुरानी सभ्यता-संस्कृति के मान-मर्दन की गवाह थी। शोभाराम के माथे पर चोट लगने से ख़ून रिस रहा था...पीठ, बाजू और टाँगों पर जहाँ कहीं भी लाठियाँ बरसी थीं...दर्द हो रहा था।

उसने ज़मीन से उठने का प्रयास किया तो मारे दर्द के चीख़ निकल पड़ी—ओ मेरिये मावे। दूसरे बजंतरी भी दर्द से कराहते हुए अपने टूटे-फूटे साज सँभाल रहे थे। पुरषोतम और दूसरे लोगों को पुलिस पकड़ कर ले गई थी। शोभाराम ने भी अपना ढोल उठाया...उसका एक पुड़ पुलिस के डंडे के वार से फूट गया था। उसने ढोल के फटे हुए पुड़ पर थाप मारी ...मगर अब इससे कोई ध्वनि नहीं निकली...न ढम-ढम और न ही ढफ...ढफ। जैसे उसका साज मानो गूँगा हो गया था...बेआवाज़। उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े...ये आँसू जिस्म पर पड़ी पुलिस की लाठियों के घाव की पीड़ा के नहीं ...बल्कि उसके अंतर्मन के घाव की पीड़ा के थे। उसे तो लगा था कि उसका यह ढोल राजा सिद्धसेन के नगाड़े की तरह कोई चमत्कार करेगा और इस युद्ध में दुश्मन को पस्त कर देगा...मगर यहाँ तो वह हार गया...और देवता

ने भी उसकी कोई मदद नहीं की...देवता की चाकरी के लिए वह घर में बीमार बापू को छोड़ आया था कि देवता उसकी रक्षा करेगा..मगर घर में बीमार बापू भी चल बसा था...और यहाँ। क्या मिला उसे बजंतरी बन कर ...उपेक्षा...तिरस्कार...और दुत्कार?...बस..अब और नहीं...नहीं...उसे अब मुक्ति चाहिए...इस ढोल से भी और देवता की चाकरी से भी। उसने ढोल को उठाया और चल दिया। उसके मन में जैसे भारी तुफान उमड़ रहा था।

...व्यास नदी के पुराने पुल पर खड़ा शोभाराम...कभी पुल के नीचे मचलती नदी की लहरों को देखता तो कभी अपने फटे हुए ढोल को। उसने एक नज़र ढोल पर डाली और दूसरे ही पल उसे नदी में फेंक दिया...छपाक की ध्वनि के साथ ही वह लहरों पर तैरने लगा और दूर जाकर ...धीरे-धीरे पानी में डूबने लगा...सामने रेहड़ाधार की पहाड़ियों पर बिखरी डूबते सूरज की लालिमा भी अब काली पड़ने लगी थी...उसका ढोल पानी में डूब गया था...और शोभाराम थके क़दमों से वापस लौट गया।

पाखी, 2009

फेगड़े के फूल

खेत की मेढ़ पर खड़ा चुन्नू...फेगड़े के पेड़ का बारीकी से मुआयना करने लगा। उसकी उत्सुक और खोजी नज़रें फेगड़े की एक-एक टहनी और पत्ते-पत्ते पर घूम रही थीं। मानो इनके बीच कहीं कोई ख़ज़ाना छिपा हो। जिसकी तलाश वह इतनी तल्लीनता से कर रहा था। बसंत का मौसम पूरे यौवन पर था...खेत-खलिहान, जंगल और चरान सब बासंती बयार में लहलहा रहे थे। मदहोश कर देने वाली जंगली फूलों की महक जो हाल ही में खिले बुरांस, कचनार और कुज्जे के फूलों से हवा में फैल रही थी ...वहीं पर खेतों की मेढ़ पर फेगड़े के पेड़ पर लगी नई मुलायम कोंपलें ताजगी का अहसास दिलाती।...और उनके बीच काफल के आकार के छोटे-छोटे हरे दाने आ गए थे...चन्नू फेगड़े के इन्हीं दानों के बीच कुछ तलाश रहा था।

जब से दादी ने उस चमत्कारी फूल की कहानी सुनाई है...उसके मन का तो चैन ही लुट गया है। मगर अपनी इस बेचैनी को वह किसी के साथ बाँट भी तो नहीं सकता। फिलहाल इसे वह राज ही रहने देना चाहता है।...बस एक बार उसे फेगड़े के फूल मिले तो मज़ा आ जाए...वह दुनिया की कोई भी चीज़ घर बैठे हासिल कर सकता है। है न कमाल की बात!

बड़ा ही चमत्कारी होता है फेगड़े का फूल। ऐसा दादी ने ही बताया था। मगर वह किसी भाग्य वाले को ही दिखाई देता है...आम आदमी को तो वह हो कर भी नज़र नहीं आता। चुन्नू की समझ में यह रहस्य नहीं आ रहा था...उसे क्या उसे तो केवल फेगड़े का फूल चाहिए बस और कुछ नहीं...यही उसका ध्येय है...जीवन का लक्ष्य है या फिर उसके जीवन की पूर्णता।

—तब तो वह जादू का फूल हुआ न दादी? चुन्नू ने अपनी जिज्ञासावश पूछा था।

—हाँ जादू का ही समझ ले बेटुआ। दादी प्यार से उसे यही कह कर बुलाती

थी। दादी ने उसके रहस्य को और गहराते हुए कहा था—फेगड़े का फूल अगर किसी को मिल जाए तो उसके घर की बरकत कम नहीं होती...उसके पेडू के दाणे कभी ख़त्म नहीं होते हैं...उसकी हर मनोकामना पूरी हो जाती है। घर में बड़ी सुख-शांति रहती है उससे।

दादी ने फेगड़े के फूल के बारे में उसकी उत्सुकता जगा दी...और ख़ुद घोड़े बेचकर सो गई थी...मगर चुन्नू के ख़यालों के बेलगाम घोड़े सरपट भागने लगे...इधर से उधर और उधर से इधर। चुन्नू ने एक नज़र पास सोई दादी पर डाली। उसे तो नींद में अधराता हो गया था...आँख बंद होते ही खर्राटे मारने लगी थी वह...मगर चुन्नू को सारी रात नींद नहीं आई। उसके लिए तो रात छोटी और सपनें लंबे हो गए थे। कई तरह के इंद्रधनुषी सपने...उसके सामने बिखरने लगते और...अपने हर रंग में उसे सम्मोहित करते जा रहे थे। चुन्नू ने रात ही रात में कई योजनाएँ बना ली थीं...जैसे उसके हाथ कारू का ख़ज़ाना लग गया हो और वह उसे ख़र्च करने के बारे सोच रहा था। पौष की वह कड़क ठंडी रात चुन्नू ने सपने बुनते और करवट बदलते काटी...और जब आँख लगी तो नींद में भी उसका चेहरा मुस्कुरा रहा था और वह सपने में ही अपने आपसे बड़बड़ाता रहा। दादी की अचानक नींद टूटी तो वह चुन्नू को नींद में बड़बड़ाते देख हैरान हो गई। ...हो न हो चुन्नू पर किसी बुरी आत्मा का साया पड़ गया है। स्कूल से आने के बाद इधर-उधर दौड़ता-भागता रहता है...कहीं नाले में गिर कर डर गया होगा। इसलिए रात को सपने में बड़बड़ाता रहता है।

सुबह जब वह उठा तो दादी ने सबसे पहले तीन लाल मिर्च, सरसों के दानें और जंग लगे लोहे की एक पुरानी कील तीन बार उसके सिर के ऊपर से घुमाई और चौराहे पर फेंक आई। मगर चुन्नू जंगल पानी के बहाने उस खेत की ओर भागा जहाँ फेगड़े का पेड़ था। सर्दियों का मौसम होने की वजह से पेड़ के पत्ते पीले पड़ चुके थे...जो हल्के से हवा के झोंके के साथ गिरने लगते। चुन्नू उदास...मानो पेड़ से पत्ते नहीं उसकी उम्मीदों के पंख झर रहे हों...ऐसे में वह सपनों की परवाज कैसे भर पाएगा? घर लौट कर दादी से पूछ बैठा—दादी फेगड़े पर फूल कब लगेंगे? दादी ने एक नज़र उस पर डाली, पर बोली कुछ नहीं, हुक्के की नड़ी पर मुँह लगाकर ज़ोर से कस खिंचा और धुआँ छोड़ते हुए खाँसने लगी...खंई..खंई..खंई। चुन्न को समझ नहीं आ रहा था कि दादी वास्तव में खाँस रही थी कि उसकी बात सुन हँस रही थी।

—ओये...तू तो बावला हो गया है...आजकल पतझड़ का मौसम है...फूल कहाँ से लगेंगे...फागण-चैत्र के महीने में पेड़ पौधों पर नए फूल पत्ते लगते हैं...तब ढूँढ़ लेना तू फेगड़े का फूल...पर सुन। दादी ने उसे जैसे रहस्य की बात बताते हुए कहा था—मैं तुझे पहले ही बता चुकी हूँ कि वह हर किसी को नहीं मिलता

...जिसके माथे पर चंद्रमा हो वही भाग्यशाली फेगड़े के फूल को ढूँढ़ सकता है।

चुन्नू ने तपाक से कहा था—मैं भी तो क़िस्मत वाला हूँ न दादी? तू ही तो कहती है कि मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ। दादी उसकी मासूमियत पर हँस दी थी—हाँ-हाँ...बड़भागा है मेरा बेटुआ। तू तो मेरे घर का चिराग है। चार-चार छोरियों के बाद बड़ी मन्नते माँगने पर पैदा हुआ है तू। इस पर चुन्नू ने कहा—तो फिर मुझे क्यों नहीं मिलता है फेगड़े का फूल?

—सब्र कर बेटा! पहले मौसम तो बदलने दे। दादी ने उसकी बालहठ को टालने के अंदाज़ में कहा—अभी मौसम नहीं आया...बिना सही मौसम के कुछ नहीं होता है...हर चीज़ का सही मौसम होता है...जब जंगल में बुराँस और कचनार खिलेंगे, कुज्जे के फूल महकेंगे...तब फेगड़े पर भी नईं कोंपलें आएँगी...उस समय ढूँढ़ लेना फेगड़े के फूल...आगे तेरी क़िस्मत। दादी ने सोचा था कि अभी मौसम बदलने में वक़्त है तब तक उसका लाड़ला पोता इस बात को भूल जाएगा।

मगर चुन्नू ने तो जैसे दादी की बात गाँठ बांध ली थी। और उसने अभी से सपने बुनने शुरू कर दिए थे...उसके सपने भी उसकी तरह ही छोटे-छोटे और मासूम थे।...सबसे पहले तो वह अपने लिए नए-नए कपड़े और जुत्ते ख़रीदेगा...उसके पास स्कूल की वर्दी के अलावा ढंग का कोई कपड़ा ही नहीं है। बापू से बार-बार कहा, पर डाँट-डपट कर चुप करा देता है। बड़ा ही खूसट है बापू भी...कभी नए फ़ैशन के कपड़े और जुत्ते भी लाकर नहीं देता है उसे...पुराने जुत्ते मोची के पास पड़े हैं, जो उसने अभी तक ठीक नहीं किए हैं...दो दिन से वह नंगे पाँव स्कूल जा रहा है...बर्फ़ की तरह सख्त कोहरे पर उसके कोमल पाँव सुन्न हो जाते हैं। ...बस एक बार फेगड़े का फूल मिले तो सारे दरिद्र दूर हो जाएँगे...पहले तो दाणे रखणे के पेड़ू में उसे रखेगा...फिर तो उनके घर में अनाज की कमी नहीं रहेगी। फिर तो माँ को भी दूसरों के खेतों में काम नहीं करना पड़ेगा...कितने सख्त और फटे हुए हैं माँ के हाथ...जब भी प्यार से अपने खुरदरे हाथ उसके गाल पर फेरती, तो उसके मुलायम चेहरे पर चुभन होने लगती। और बापू को भी लाला की चाकरी से मुक्त करवा देगा वह...उस हरामी लाला ने थोड़ा-थोड़ा क़र्ज़ देकर उनका खेत रैहन रख लिया है...अब अपने ही खेत में उसके बापू को मज़दूर की तरह लाला के बैलों को जोतना पड़ता है...वह लाला से उस खेत को भी छुड़वाएगा।

इसके बाद वह फेगड़े के फूल को पैसों के डब्बू में रखेगा...माँ इस डब्बू को अपने संदूक़ में छुपाकर रखती है...और उसकी चाबी अपने परांदे के साथ बांधे रखती है...जब भी उसे पैसों की ज़रूरत होती है तो पैसों के डब्बू में से कपड़े की लीरों में लपेटे दस-बीस के दो चार नोट निकाल देती है...यही उसकी जमापूँजी

होती है...जिसे वह बापू से छुपाकर छोटी-मोटी ज़रूरतों के लिए रखा होता है। अगर गलती से भी बापू के हाथ लग जाए तो उन्हें वह दारू में उड़ा देगा। लेकिन जैसे ही उसे फेगड़े का फूल मिलेगा...फिर तो उनके घर में पैसों की कमी नहीं रहेगी...चाहे वह जितना मर्जी ख़र्च कर ले। बापू की तरह कंजूस नहीं बनेगा वह... जो कुछ भी माँगेगा, लाकर दूँगा।

सपने तो और भी हैं उसके...मगर वे सब नितांत अपने हैं। वह नलवाड़ के मेले में बापू के साथ जाएगा...जी भर कर जलेबी खाएगा और हिंडोला झूटेगा। मस्त बैलों को देखेगा और छिंज में टमक की तान पर दंड पेलते पहलवानों की कुश्ती भी देखेगा। वह अक्सर बापू के साथ छिंज देखने जाता मोटे-मोटे डौले और पट्ट वाले पहलवानों को मिट्टी के अखाड़े में दाँव लगाते जब चुन्नू देखता तो मारे जोश के उसका भी अंग-अंग फड़क उठता। उसके इलाक़े का गांधी गुज्जर और जगदीश पहलवान मशहूर थे। दोनों ही जब लंबे-चौड़े भीमकाय पंजाबी पहलवानों को धोबी पछाड़ दे कर पटक देते, तो लोग उन पर नोटों की बारिश कर देते। यह सब चुन्नू को रोमांचित कर देता।

चुन्नू ने पेड़ का चप्पा-चप्पा छान मारा था। मगर फेगड़े का फूल उसे कहीं नज़र नहीं आया। पेड़ पर फूल हो तो मिले...पर दादी कहती है कि फूल उसी को मिलता है जो क़िस्मत वाला हो। क्या वह क़िस्मत वाला नहीं है? स्कूल में गुरुजी कहते हैं क़िस्मत भी उसी का साथ देती है जो मेहनत करता है...जो सफ़र के लिए क़दम ही नहीं उठाएगा वह मंज़िल पर पहुँचेगा कैसे? इस पेड़ पर नहीं तो किसी और पेड़ पर सही...फूल तो मिलेगा ही...बस उसे अपनी तलाश जारी रखनी है। खेत-खलिहान, नाल-धार सब जगह पेड़ ही पेड़ हैं...कहीं तो खिला होगा वह चमत्कारी फूल...इससे पहले कि फूलों का मौसम निकल जाए, हर हालत में फूल तलाशना होगा...दादी झूठ तो बोल नहीं सकती...उसने देखा नहीं...सुना तो ज़रूर होगा इस फूल के बारे में। पर...अकेला वह कहाँ-कहाँ भटकेगा...इसकी तलाश में। चुन्नू ने तय किया कि अब वह अपने इस अभियान में धन्नू को भी शामिल करेगा। दोनों छुप-छुप कर खोजेंगे...उस चमत्कारी फूल को।

लँगड़े पंडित के बाग़ से चकोतरे चुराकर दोनों देवधार की ढाँक पर हाथी के क़द से भी ऊँची चट्टान पर बैठ कर अपनी योजना को अंतिम रूप देते हैं। चुन्नू की इस योजना से पहले तो धन्नू सहमत नहीं होता।

वह आशंका जताता है—फेगड़े का फूल होता भी है कि नहीं...?

—हाँ होता है...जब दादी बोलती है...तो ज़रूर होगा...पर वह हर किसी को दिखाई नहीं देता...किसी क़िस्मत वाले को ही दिखाई देता है। हो सकता है हम

दोनों में से किसी एक के भाग्य में यह फूल होगा...पर यह बात हम किसी और को नहीं बताएँगे।

चुन्नू ने धन्नू को राजी तो कर लिया पर उसे डर इस बात का था कि अगर दोनों में से किसी एक के परिवार वालों ने उन्हें साथ देख लिया तो दोनों पर ही कहर टूट पड़ेगा। कई सालों से दोनों ही परिवार ज़मीन के एक टुकड़े को लेकर कोर्ट-कचहरी के मामलों में उलझे हैं। जब भी फसल की बीजाई या कटाई का समय होता है...दोनों परिवारों के बीच वाकयुद्ध से शुरू हुई यह लड़ाई डाँग-सोठे तक पहुँच जाती। मगर दोनों परिवारों ने आज तक हार नहीं मानी। सगे टब्बर होने के बावजूद दोनों परिवारों में बोलचाल बंद थी...लेकिन बड़ों की दुश्मनी का बच्चों की दोस्ती पर असर नहीं पड़ा।

धन्नू ने चुन्नू से पूछा—अगर तुझे फेगड़े का फूल मिल गया तो तू क्या माँगेगा?

चुन्नू ने तपाक से कहा—मैं सबके लिए प्यार माँगूँगा।

प्यार माँगेगा तू...हा..हा..हा...हा! धन्नू ज़ोर से हँसा।

—मुआ...तू...घनचक्कर। उससे घर के दाणे बढ़ते हैं...बरकत होती है...दिलों की नफरत नहीं मिटती।

—ऐसा नहीं है, जिस फूल से बरकत हो सकती है...ज़रूर उससे लोगों में मेल-जोल भी बढ़ता होगा। चुन्नू ने कहा—माँगने वालों ने अब तक उस फूल से केवल घर के दाने और धन की बरकत ही माँगी होगी...जैसे लोग देवता से अपने घर में सुख शांति और दूसरे का विनाश माँगते हैं। चुन्नू ने धन्नू का हाथ पकड़ते हुए कहा—पड़ोसियों से मेलजोल और भाईचारा आज तक किसने माँगा? मैं तो अब यही माँगूँगा।

—ओ...यारा...अगर माँगना ही है तो किसी लड़की का प्यार माँग...मैं तो मास्टर की छोकरी को फूल सुँघाकर पटाऊँगा...और उसी से बड़ा होकर शादी भी करूँगा...बड़ी बाँकी छोकरी है वो...तू माँगते रहना पड़ोसियों का प्यार-व्यार...मेलजोल और भी कुछ।

इसके बाद दोनों दोस्त चमत्कारी फूल को खोजने के अभियान में जुट गए। उनकी यह खोज हर उस जगह पर जारी रही...जहाँ उन्हें लगता कि उस जगह पर फेगड़े का पेड़ हो सकता है...पर हर जगह से उन्हें निराशा ही हाथ लगी। नाले के उस पार घराट के पीछे भी फेगड़े का पेड़ था...मगर अब वहाँ घराट के पुड़, काकर और अवशेष बाक़ी थे...फेगड़े का पेड़ कब का कट गया था।

तभी चुन्नू की नज़र पहाड़ी के साथ लगे प्रधान के क्रशर पर पड़ी। वो देख

ओये धन्नू देख...लोहे का रागस कैसे चट्टानों को पीस कर मुँह से धुआँ उड़ा रहा है। दादी कहती है कि टुंडी रागस जब आता था तो अपने साथ ज़ोर का बागर-झाँखड़ लेकर आता ...धूल भरी आंधी से चारों तरफ़...अंधेरा फैल जाता था।

—हाँ...ये रागस भी देख कैसे ज़ोर से धूल मिट्टी उड़ा रहा है। धन्नू ने उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—दो ही सालों में सारी धार को खा गया है...पेड़-पौधे...चरान सब ख़त्म हो गए...बड़ा भुक्खड़ है भैण...चो...इसका तो पेट ही नहीं भरता है।

—पहले लोग यहाँ डंगरे चराते थे...पर यह तो मिट्टी- पत्थर...पेड़-पौधे...और चरान सब कुछ खा गया। देख सारी पहाड़ी कैसी छलनी कर दी है साले ने। चुन्नू ने कहा—एक दिन तो यह रागस धार की टेकरी पर बसे गाँव को भी निगल जाएगा। दोनों वहाँ से चल पड़ते हैं।

दिन भर की भागदौड़ से चुन्नू और धन्नू थक कर चूर हो गए थे। लेकिन चुन्नू के अंतर्मन के सतरंगी संसार में अब भी उम्मीदों के फूल खिल रहे थे...अकेले में बैठा वह अपनी इन उम्मीदों को परवान चढ़ाने की उधेड़बुन में लगा रहता। अब उसे अपने सपने छोटे लगने लगे थे...वह तो बड़ों द्वारा बिगाड़ी गई इस दुनिया को सुधारना चाहता था...इसके लिए उसके पास फेगड़े के फूल का होना ज़रूरी था...इसके बिना वह कुछ भी नहीं कर सकता था।

इधर कुछ दिनों से दादी महसूस कर रही थी कि उसका लाड़ला पोता खोया-खोया उदास सा रहने लगा है...फेगड़े के फूल की बात बताकर इस नन्ही सी जान को परेशानी में डाल रखा है...उसे अब अपनी बात पर पछतावा होने लगा था...पर उसने यह बात चुन्नू पर ज़ाहिर नहीं होने दी। प्यार से उसे पुचकारते हुए वह बोली—दिन भर भागदौड़ कर थक गया होगा मेरा बेटा...अब खाना खा ले...फिर सो जा।

—दादी के सिरहाने पर बैठ चुन्नू ने फिर दादी से फेगड़े के फूल की बात फिर छेड़ दी।

—दादी फेगड़े के फूल से मेल जोल बढ़ता है?

दादी ने उसे टालने का प्रयास करते हुए कहा—हाँ ऐसा भी होता है...पर तू अब सो जा।

—तब तो बापू और ताऊ के बीच भी मेल जोल हो जाएगा न दादी?

चुन्नू केमुँह से यह बात सुन्न एक बारगी तो दादी भी सन्न रह गई, फिर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली—तुझे इन दोनों का लड़ना-झगड़ना बुरा लगता है न?

—हाँ...दादी। बहुत बुरा लगता है...धन्नू और मैं सबके सामने एक-दूसरे के साथ बातें नहीं कर सकते...साथ-साथ खेल भी नहीं सकते...दादी ऐसा क्यों होता है ...क्या बड़े होने पर सब ऐसा ही करते हैं ?...बड़े लोग भी बच्चों की तरह आपस में मिल जुल कर नहीं रह सकते हैं...दादी ?

चुन्नू के मासूम सवालों से दादी परेशान थी...उसकी आँखें भर आई थीं। अपनी ही कोखजाये एक ज़मीन के टुकड़े के लिए जानी दुश्मन बन बैठे थे। अब तो दोनों एक दूसरे के साये से भी दूर भागते थे। अभी कुछ दिन पहले धन्नू के पिता ने अपने घर देवता को आमंत्रित किया...सारे गाँव को सादा-न्यूंदरा दिया था...पिछवाड़े में चुन्नू के परिवार को इस अवसर पर नहीं बुलाया था...धन्नू और चुन्नू दोनों को ही यह बात बुरी लगी थी...जब सब लोगों के लिए धाम का इंतजाम है तो चुन्नू के टब्बर को क्यों छोड़ दिया? उसका मन हुआ कि वह बापू से इस बारे में बात करे...पर उसकी हिम्मत नहीं हुई। उसने अपनी ओर से चुन्नू को निमंत्रण दे दिया था। मगर वह भी उसकी तरह ही विवशं था--बापू को पता चला तो वह जान से मार डालेगा। चुन्नू ने उदास स्वर में कहा था। मगर धन्नू ने उससे अपना याराना निभाया था। रात के समय सब लोग पंगत में बैठकर धाम का भात खा रहे थे...धन्नू बार-बार बोटी से और अधिक चावल और सब्जी की माँग करता...जब सब लोग खाना खाने बैठे तो वह अंधेरे में भात से भरी पत्तल उठा कर पिछवाड़े की तरफ़ गया...और सीटी बजाकर चुन्नू को बुला लिया...जहाँ दोनों दोस्तों ने एक साथ बैठ कर धाम का भात खाया था।

उस घटना को याद कर चुन्नू दादी से बोला—दादी फेगड़े का फूल बापू और ताऊ में फिर से मेल करवा सकता है ? फिर धन्नू और मुझे छुप-छुप मिलना नहीं पड़ेगा।

—मेरा बस चले तो मैं इन दोनों को फेगड़े का फूल घोल कर ही न पिला दूँ...बार-बार की कलह ही ख़त्म हो जाए। दादी की बातें चुन्नू को लोरी की तरह लगी और वह मिट्ठे सपनों की आगोश में समा गया।

उसका अवचेतन मन अब भी फूल की तलाश में भटक रहा था...जोगणी फाट के झरने के पास वह और धन्नू बैठे सुस्ता रहे थे...दोनों ने जोगणियों के बारे में सुन रखा था कि वे वर्षा लाने वाली देवियाँ होती हैं...जब भी सूखा पड़ता है तो जागणियों को पूज देणी पड़ती है...बकरे के मांस के टुकड़े उस दिशा में फेंके जाते हैं जिस ओर जोगणियों का वास होता है...इस मांस को आसमान में उड़ती हुई ईलें खाने के लिए आ जाए तो समझो जोगणी माता प्रसन्न हो गई...और एक--डेढ़ दिन के भीतर ही वर्षा होने की उम्मीद होती है...जोगणियाँ ऐसे ही वीराने में रहना पसंद करती हैं।

दादी से सुन रखा था कि जोगणियों के इस झरने के पास लोगों को विवाह शादियों के लिए भांडे-बर्तन मिल जाया करते थे। दादी कहती कि यह सतजुग की बात थी...जब किसी के मन में छल-कपट नहीं होता था...लोग अपने घर के कारज का निमंत्रण देने इस जोगणी झरने के पास आते थे और धूप-बत्ती करके प्रार्थना करते कि अमुक प्रविष्टे उनके घर कारज के लिए बर्तन चाहिए...उस दिन जब वे वहाँ पहुँचते तो ज़रूरत के मुताबिक़ बर्तन बलटुहीं, कड़ाह, धड़छ-कड़छ और डबरू आदि पानी के किनारे रखे मिलते...कारज ख़त्म होने पर फिर वहीं पर बर्तनों को छोड़ आते। मगर एक बार किसी लालची आदमी ने कुछ बर्तन ग़ायब कर दिए।

उस दिन के बाद यहाँ पर बर्तन मिलने बंद हो गए थे। अब तो झरने का पानी भी सूख गया था। पानी क्या सूखा था गाँव की मानो तकदीर ही फूट गई थी। नाल-आल सब सूख गए थे...मच्छलियाँ मर गई थीं...घराट बंद हो गए थे। जो थोड़ा बहुत पानी बचा था उसको लेकर गाँव वालों में रोज़ झगड़े होते...आपसी मेल मिलाप की जगह दिलों में दरारें पड़ गई थीं...रिश्तों की डोर टूट चुकी थी। घर-घर में महाभारत शुरू हो गया था...जो ख़त्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था...एक तरह से पूरा का पूरा गाँव शापित हो गया था।

सूखे झरने के किनारे बैठा चुन्नू मन ही मन इस शापित गाँव को शाप मुक्त करना चाहता था। इस सबका एक ही परिहार था— फेगड़े का फूल...वो अगर मिल जाए तो पूरे गाँव का कायाकल्प हो जाए। चुन्नू अभी यह सोच ही रहा था कि सामने की ढांक से धन्नू ने उसे आवाज़ लगाई ...चुन्नू ओये इधर आ देख इस पेड़ पर क्या लगा है...चुन्नू उस ओर भागा...उसकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा...फेगड़े के पेड़ पर रंग बिरंगे फूल लगे थे। दोनों ख़ुश। फूल मिल गए...उनकी मेहनत रंग लाई थी...दोनों ने अपने-अपने झोले फूलों से भर लिए थे...अब वे दुनिया के सबसे ताक़तवर और क़िस्मत वाले बन गए थे। चमत्कारी फूल उनके झोले में थे...बस अब इसकी परीक्षा करनी बाक़ी थी। क्यों न यहीं से शुरुआत की जाये?

चुन्नू ने धन्नू से कहा—चल उड़ें।

—कैसे?

—कैसे? मूर्ख चमत्कारी फूल हमारे झोले में है...जिस तरह से हनुमान जी उड़ते थे...हम भी उड़ेंगे।

—तो चल फिर उड़।

—ऊपर और ऊपर...दोनों हवा के वेग के साथ ऊपर उठने लगे। झाड़ी, झरना, पेड़, धार...सब नीचे रह गए।

—हनुमान की तरह वे दोनों पवन के रथ पर सवार थे...कभी इस झोर पर तो

कभी उस झोर पर उन्मुक्त उड़ान भर रहे थे...हवाई जहाज की तरह कलाबाजियाँ करने लगे।

चुन्नू ने धन्नू से पूछा—मज़ा आ रहा है?

—हाँ...बड़ा मज़ा आ रहा है...और तुझे?

—मुझे भी...ऐसा लग रहा है जैसे हंडोले पर बैठे हों। अब ऐसा करते हैं जोगणी झरने पर फूल फेंकते हैं। चुन्नू ने कहा और एक फूल झरने के स्रोत पर फेंका...पानी की मोटीधार फूट पड़ी...मानो अर्जुन का तीर धरती के गर्भ से पानी खेंच लाया हो...पानी की धारा सूखे नाले से होकर बहने लगी। हवा में उड़ते हुए दोनों ने गाँव पर फूलों की बारिश कर दी...गाँव की बंजर ज़मीन लहलहा उठी...खेत खलिहान में बहार लौट आई...कई सालों बाद नाले के पानी में मच्छलियाँ तैरने लगी...घराट चलने लगे...बावड़ियाँ व नौण पानी से भर उठे। ग़ायब हो चुकी चिड़ियों के झुंड पेड़ों पर चहचहाने लगे। फिर...प्रधान के क्रशर पर भी एक फूल फेंका...तो वह ग़ायब हो गया...खनन से छलनी हुई धार पर पहले की तरह पेड़-पौधे उग आए थे...मानो यहाँ पर कुछ हुआ ही नहीं था।

हवा में उड़ते हुए अब दोनों थक गए थे। धरती पर उतरना चाहते थे...नाले में पानी से भरा तालाब देखा...तो अपने को रोक नहीं पाए...ऊपर से छलाँग सीधे पानी में...छपाक...छपाक! तालाब के पानी में कई लहरें उठीं...फिर वे दोनों पानी में तैरने लगे...नाक पकड़ कर डुबकी लगाते तो कभी उल्टे तैरने की कोशिश करते। तैरते हुए दोनों के हाथ-पाँव दोनों तेज़ी से चल रहे थे। चटाक...दादी के मुँह एक चाँटा पड़ा और वह जाग गई...तो देखा कि सपने में चुन्नू हाथ-पाँव मार रहा है...उसी का हाथ उसके गाल पर पड़ गया था...वह अब भी हाथ-पाँव हिला रहा था...दादी ने उसे झिंझोड़ा...चुन्नू! ओ...चुन्नू! क्या हुआ बेटा...उठ।

चुन्नू हड़बड़ा कर उठा और दादी से बोला—दादी वो मेरा फेगड़े का फूल कहाँ है?

वागर्थ, 2007

चल गए घोड़े...

शतरंज और सियासत के घोड़ों में एक समानता होती है। बिसात चाहे शतरंज की हो अथवा राजनीति की...दोनों की चाल का मकसद तो आख़िरकार विरोधी को शह और मात के खेल में उलझाना ही है। चुनावी मौसम में तो सियासी घोड़ों का बाज़ार ख़ूब सजता है। पारखी भी नज़र रखते हैं...कौन से घोड़े पर दाँव लगाया जा सकता है...जो सही चाल चल कर बाजी पलट दे। वैसे चाल वाले घोड़े की अदा ही कुछ और होती है। बुजुर्गों का कहना है कि घोड़े की चाल के आगे मतवाली नार की अदा भी फीकी पड़ती है। वह तेज़ रफ़्तार के बावजूद अपने सवार को कम तकलीफ देता है। ऐसे में दौड़ते हुए अगर सवार के हाथ में दूध से भरा कटोरा भी हो...तो एक बूंद भी ज़मीन पर नहीं गिरती। वैसे सियासत की बात कुछ और है...सियासत में जिस घोड़े की चाल का प्रतिद्वंद्वी को पता न चले, वही बाजी पलट सकता है।

मगर मैं जिन घोड़ों का ज़िक्र करना चाहता हूँ, वे न तो शतरंज के घोड़े हैं और न ही सियासत के रेस कोर्स में दौड़ने वाले मौसमी घोड़े। मेरे घोड़े तो जनाब पहाड़ की पत्थरीली पगडंडियों में पीठ पर बोझ ढोने वाले हैं। जिनकी पीठ पहाड़ केबोझ से कई बार लहूलुहान होती रहती है...और घाव हल्दी-तेल के लेप से ठीक होने के बाद भी निशान छोड़ जाते हैं। कुछ इसी तरह के निशान आज मेरी स्मृतियों में भी उभर आए हैं।

वे बेरोज़गारी के दिन थे। एक निजी स्कूल से दो महीने के लिए पढ़ाने का प्रस्ताव आया था। स्कूल की एक मास्टरनी अपने निजी काम से दो महीने की छुट्टी पर गई थी। उसकी जगह पर मुझे बच्चों को पढ़ाना था। वैसे टाइम पास करने के लिए यह प्रस्ताव बुरा नहीं था। बेकार घूमने से तो बेहतर था कि अपना अर्जित ज्ञान बच्चों में बाँटू। मैंने सहर्ष इसके लिए हामी भर दी। चलो दो महीने की मास्टरी ही सही। बच्चों के बीच दो महीने का समय कैसे गुज़रा, पता ही नहीं चला। छुट्टी काट कर वह अध्यापिका लौटी...तो स्कूल प्रबंधन के पास हम दोनों में से किसी

एक को नौकरी पर रखने के सिवाय कोई दूसरा चारा नहीं था। जिस तरह से मैंने दो महीने में स्कूल में अपनी पैठ बना ली थी उससे उक्त अध्यापिका की छुट्‌टी तय थी। मगर मेरे लिये ऐसा कर पाना संभव नहीं था। उस अध्यापिका का नाम शायद संगीता था। मुझसे अकेले में उसने कहा—तुम्हें शायद इस नौकरी की ज़रूरत हो न हो पर मुझे इसकी ज़रूरत है। मेरे पति बेरोज़गार हैं...मुझ पर परिवार और बच्चों की जिम्मेदारी है। मैनेजमेंट भी लगता है आपको रखने के पक्ष में है। ऐसा कहते हुए उसका गला भर आया था।

मैंने उसे आश्वासन दिया—तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं है...कोई भी तुम्हें नौकरी से नहीं निकालेगा...मैं ही इस नौकरी को छोड़ रहा हूँ। मुझे आज भी याद है, संगीता की आँखें तरल हो उठी थीं। मैंने स्कूल प्रबंधन को अपना इस्तीफा सौंप दिया। उस समय सर पर कोई जिम्मेदारी नहीं थी। पिताजी की पंडिताई अच्छी-भली चल रही थी...यजमानो की दया से घर में सुख-समृद्धि थी। मुझे खामोश देख संगीता ने पूछा था—मेरे कहने पर नौकरी से इस्तीफा तो दे दिया अब तुम करोगे क्या.. ?

मैंने भी हँसते हुए जवाब दिया—कुछ भी कर लूँगा...और नहीं तो घोड़े ही पाल लूँगा। बहुत कमाई है इस धंधे में...चार पाँच घोड़े हों तो कलैक्टर से ज़्यादा कमाई कर लेता है घोड़े वाला। मैंने मज़ाक़ में ही यह सब कह दिया था। और फिर मैं ख़ुद थोड़े चलाऊँगा घोड़े...दो आदमी रखूँगा। इस तरह दो और लोगों को रोज़गार मिल जाएगा। मुझे क्या, बस बैंक की क़िस्तें निकलती रहनी चाहिए! और क्या।

स्कूल से निकलते ही मैंने जैसे कल्पना के सारे कपाट खोल दिए थे।...मेरे सपनों की रंगभूमि तो कुछ और ही थी...जहाँ मैं अपने सपनों को रंगभर सकूं। उसी आधार पर मैंने अपने लिए सपनों का महल खड़ा कर दिया था। मैं असली घोड़ों के लिए कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगा था...उनकी रफ़्तार तेज़ थी और मेरे लिए उन्हें साध पाना मुश्किल हो रहा था।

घर आकर माँ को स्कूल छोड़ने की बात बता दी थी। यह जानकर माँ के चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित संतोष झलक रहा था। उसके बेटे ने किसी ज़रूरतमंद के लिए इतना बड़ा त्याग कर दिया। वरना आज के जमाने में कौन किसी के लिए अपनी नौकरी छोड़ देता है। भले ही वो आईपीएच महकमे में वाटरगार्ड की नौकरी ही क्यों न हो।

—कोई बात नहीं, तेरे पिता को मैं मना लूँगी। माँ ने मेरा हौंसला बढ़ाते हुए कहा था—पाँच-सात सौ की नौकरी भी कोई नौकरी होती है...पर तू अब क्या करेगा। अपने पिता के साथ यजमानो के घर जाया कर...उनका भी हाथ बँट जाएगा।

नहीं माँ, ये सब मुझसे नहीं होगा। मैंने अपना फ़ैसला सुना दिया था—बेहला रह जाऊँगा पर गठड़ी उठाकर यजमानों के घर-घर नहीं जाऊँगा।

—तो फिर क्या करेगा तू अब? माँ थोड़ी चिंतित हो उठी थी। जवान लड़का बिना कामकाज के बेहला फिरे यह अच्छा नहीं लगता है...बेटा कुछ तो करना ही पड़ेगा। माँ ने समझाने की कोशिश की। इससे तो वह स्कूल की नौकरी ही अच्छी थी जिसे तू छोड़ आया।

—गाँव में ही छोटी-मोटी दुकान करूँगा और।

—और क्या? माँ ने मेरी अधूरी बात को पकड़ लिया था। और क्या करेगा तू।

—और चार-पाँच घोड़े पालूँगा।

—क्या...? माँ को जैसे मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था...घोड़े पालेगा तू...अपने पिता का स्वभाव तो तू जानता ही है। पुरोहित का लड़का घोड़े पालेगा तो गाँव-परगने में क्या इज़्ज़त रह जाएगी उनकी। तुझे घर से निकाल बाहर करेंगे। ऐसा ग़ज़ब मत करना बेटा। माँ जैसे मनुहार करने लगी थी।

मुझे लगा कि माँ से बात करके तो मैंने बड़ी गलती कर दी। अब अगर माँ ने सारी बात पिता जी से कह दी तो घर में हंगामा हो जाएगा। जिस घर की सुबह धूप की सुगंध से महकती है...उस घर के आँगन में घोड़े की लीद की बदबू फैलेगी। पिताजी की घंटों तक चलने वाले पूजा-पाठ के दौरान होने वाली शंख ध्वनि के बजाय जब घोड़ों की हिनहिनाहट होने लगेगी, तो क्या नजारा होगा। पिता पूजा पाठ के मंत्र छोड़ कर गालियों की बरसात कर डालेंगे।

माँ तो आख़िर माँ थी। बेटे और पति के बीच संतुलन बनाना वह ख़ूब जानती थी। मेरे द्वारा स्कूल की नौकरी छोड़ने की बात पिताजी से इस अंदाज़ से कह डाली थी कि वे सारी बात को सुनकर नाराज नहीं हुए। माँ ने कह दिया था कि मैं टैस्ट आदि देने की तैयारी करना चाहता हूँ...इसलिए स्कूल की नौकरी छोड़ दी।

—पिताजी ने रुखे स्वर में कहा था—टेस्ट की तैयारी करे तो सही...मुझे नहीं लगता तेरा लाड़ला ऐसा कुछ करेगा भी। गाँव की चौधराहट और नेतागिरी से इसे फुर्सत मिले तब ना।

माँ ने मुझे भी कह दिया था—अबके तो मैंने सँभाल लिया आगे से दोबारा घोड़े पालने की बात की तो फिर तेरी खैर नहीं।

घर में होने वाले बवाल को देख मैंने घोड़े पालने का विचार त्याग दिया। मगर बेकार बैठने से बेहतर था...कुछ समाज सेवा की जाए। सो अपने गाँव के युवाओं को इकट्ठा कर एक युवक मंडल का गठन कर लिया। पंचायत प्रधान से बात कर सामाजिक कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे। इलाक़े के विधायक जब दौरे पर आए तो

उनसे गाँव की कुछ समस्याओं को उठाने के अलावा युवाओं के लिए लाईब्रेरी खुलवाने का आश्वासन ले लिया। अब पिता जी को मेरी यह चौधराहट अखरने लगी थी। माँ से कहने लगे थे—देख रहा हूँ तुम्हारा लाड़ला काम-धाम तो कुछ करता नहीं है...बस मुफ्त की चौधराहट में लगा रहता है। पंडिताई के काम से तो कोसों दूर भागता है। सीख ले तो पुरखों की परंपरा आगे बढ़ेगी। मगर माँ उनके गुस्से पर जैसे ठंडा पानी छिड़क देती।

—क्यों गुस्सा करते हो जी...लोगों की मदद ही तो करता है बेचारा। ...और फिर सारी उम्र थोड़े यहीं बैठा रहेगा। भाग्य का क्या पता नौकरी मिली तो मुड़कर वापस घर नहीं लौटेगा। बेटे तो पहाड़ के पानी की तरह होते हैं जी...एक बार चोटी से उतरा तो फिर वापस नहीं लौटता है। कुछ दिन मज़े कर लेने दो इसे फिर तो यह भी गाँव आने को तरसेगा और हम इसका मुँह देखने को। माँ की बातों से पिता जी भी पिघल जाते—हाँ बात तो तुम्हारी भी ठीक है। पर छोटी-मोटी नौकरी लग जाता तो इसके रिश्ते की बात कहीं चलाई जा सकती थी। लोग पूछेंगे लड़का करता क्या है तो क्या जवाब दूँ। फ़ौज में जाने से मना करता है...यहाँ कहाँ रखी है सरकारी नौकरी।

पिताजी को लगता कि गाँव के लोगों की सेवा में मैं अपना लक्ष्य ही न भूल जाऊँ। उनके लिए जितनी जल्दी हो सके मेरा नौकरी लगना ज़रूरी था। यजमानों का कोई बेटा फ़ौज में भर्ती हो जाता तो वे फूले नहीं समाते...कई दिनों तक पिता जी उसके बारे में चर्चा करते रहते। वैसे भी पहाड़ के युवाओं में फौज की भर्ती का बड़ा क्रेज होता है। लड़का फ़ौज में भर्ती हुआ नहीं कि रिश्ते आने लग जाते हैं। पिता भी मेरे नौकरी लगने पर शादी-ब्याह की बात आगे बढ़ाने को उतावले थे। मगर मेरे लिए तो नौकरी ढूँढ़ना ऐसा था जैसे पत्थरीले पहाड़ पर पानी निकालना। कई जगह आवेदन किए थे...कहीं से भी जवाब नहीं आया था। पिताजी को मेरी बेरोज़गारी बोझ न लगे इसलिए उनसे पैसे लेना ही बंद कर दिए थे। मैंने एक बार फिर अपनी उस योजना को रिव्यू किया। क्यों न घोड़ों के नाम पर लोन लेकर कोई और काम धंधा शुरू किया जाए। बैंक में दिखाने के लिए किसी के भी घोड़े ले जाऊँगा..उन्हें उस दिन की दिहाड़ी दे दूँगा...वैसे भी पच्चीस हज़ार पर साढ़े सात हज़ार के क़रीब सब्सिडी मिलेगी।

बस फिर क्या था। किसी गोपनीय मिशन की तरह मैं अपनी इस योजना को साकार रूप देने में जुट गया। घर में माँ को भी अब राजदार नहीं बनाया। और पिताजी को भी इस बात की भनक तक नहीं लगने दी। बीडीओ आफ़िस में डिलिंग हैंड से जब इस बारे में चर्चा की तो वह मेरा प्रमाण पत्र देखकर चौंक गया—इतना

पढ़-लिखकर घोड़े ही पालोगे। कोई और काम क्यों नहीं करते।

—इसमें क्या बुराई है...घोड़े चलाने के लिए आदमी रखूँगा और ख़ुद छोटी-मोटी दुकान करूँगा। मेरी ओर अविश्वसनीय नज़रों से देखते हुए वह बोला—यह काम थोड़ा मुश्किल लगता है।

—आपके होते हुए काम आसान हो जाएगा। मैंने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—जो आपका सेवा-पानी होगा...मैं दे दूँगा। अब उसके तेवर कुछ ढीले पड़ गए थे...मानो वह इसी बात के इंतज़ार में था।

—ऐसी तो कोई बात नहीं है। आप दो दिन बाद आकर अपना प्रोजेक्ट ले जाना। बैंक में काम करवाना आपकी अपनी जिम्मेदारी है।

...दो दिन बाद बैंक मैनेजर से अपने प्रोजेक्ट के सिलसिले में मिला। उन्होंने सरसरी नज़र इस पर डाली और बोले—पढ़े-लिखे हो घोड़े पालने की क्या ज़रूरत है...कोई और काम करो, बैंक आपकी मदद करेगा—मदद के लिए ही तो आपके पास आया हूँ सर। मैंने कहा—पाँच घोड़ों के लिए मैं अपने साथ दो आदमी रखूँगा...इस तरह दो और लोगों को भी रोज़गार मिल जाएगा...मैं तो बस समय पर बैंक की किस्त अदा करता रहूँगा। और फिर ऐसा कहाँ लिखा है कि पढ़ा-लिखा आदमी घोड़े नहीं पाल सकता।

बैंक मैनेजर ने बड़े बाबू को बुलाया और कहा—दुबे जी...ज़रा ये केस देखना।

—दुबे जी अपने आपमें अजीब करेक्टर था। आँखों पर मोटा सा चश्मा...सिर सफाचट...जबान में हकलाहट...ऊपर से एक वाक्य को दो-तीन बार दोहराना उनकी आदत थी। मेरी ओर मुखातिब होकर बोले—चलिए...चलिए ...आप चलिए मेरे साथ। मैं चुपचाप उनके पीछे चल पड़ा। अपनी सीट पर आकर मेरी ओर हिकारत भरी नज़रों से घुरते हुए उसने कहा—घोड़े चलाएँगे आप...कोई और काम क्यों नहीं करते। उसके इस तरह कहने से मुझे चिढ़ सी हो गई। मैंने तल्लखी से उसकी बात का जवाब देते हुए कहा—जी हाँ, मैं घोड़े ही चलाऊँगा...पर आपको इससे क्या मतलब, मेरे सारे काग़ज़ात पूरे हैं...आप लोन केस अपरूव कीजिए! बस ...आपको लोन की क़िस्तें समय पर मिलती रहेगी।

—ऐसे कई लोग आते हैं। वह भी ताव में आ गया—सरकार का पैसा खाने के चक्कर में रहते हैं। बिना घोड़े देखे मैं कैसे पास कर दूँ आपका लोन।

—तो क्या फिर घोड़े बैंक में लाने पड़ेंगे...आप तभी लोन देंगे?

—हाँ...हाँ, बैंक में ही लाने पड़ेंगे। उसने फाईल में सर गड़ाए हुए ही जवाब दिया।

बैंक से निकलते ही मैं सीधे नदी के किनारे घोड़े वालों की खोज में निकल पड़ा। अब मेरे लिए घोड़ों पर लोन लेना प्रतिष्ठा का सवाल बन गया था। किसी भी सूरत में लोन लेकर रहूँगा...वो भी घोड़ों पर ही...बैंक का बड़ा बाबू आख़िर अपने आपको समझता क्या है। ऐसे बर्ताव करता है मानो उससे खैरात माँग रहा हूँ...क़र्ज़ लूँगा तो ब्याज सहित अदा भी करूँगा।

तपती दोपहर में मैं नदी की ओर जा रहा था। पहाड़ की तराई से ठीक नीचे नदी थी। पगडंडी से उतरते हुए नदी भी रेत के बीच से गुज़रती हुई पगडंडी सी प्रतीत हो रही थी। जिसके दोनों ओर रेत-बजरी के ढेर थे...जिन्हें घोड़े-खचरों की पीठ पर लाद कर इन्ही पगडंडियों से पहाड़ के दूसरी ओर तक पहुँचाया जाता। कुछ देर तक मैं घाटी की पत्थरीली पगडंडी और दूर तक फैले नदी के विस्तार को निहारता रहा। अगर पहाड़ के जिस्म पर पगडंडियाँ न हो तो पहाड़ की धड़कन ही रुक जाए। पगडंडियों का होना बेहद ज़रूरी है...क्योंकि पगडंडियाँ ही पहाड़ की हेकड़ी को तोड़ती हैं और शिखर को छूने का हौंसला देती हैं। आदमी हो या फिर सामान ढोने वाले घोड़े...पहाड़ के सीने पर पड़ी इन रेखाओं पर हर रोज़ ऐसे गुज़रते हैं...जैसे आदमी के जिस्म में ख़ून दौड़ता है। पहाड़ के कठिन जीवन का यही तो सच्च है। दूर से देखने वालों को मनमोहक और लुभावने लगते हैं। मगर वास्तव में यहाँ की कंदराएँ पल-पल ज़िंदगी की जीवटता का इम्तीहान लेती हैं।

...नदी से थोड़ा हट कर पेड़ों के झुरमुट की घनी छाँव में घोड़े वालों का पड़ाव था। घोड़ों की पीठ का असबाब उतार कर एक तरफ़ रख दिया गया था। घोड़ों को खुले मैदान में हरी-हरी दूब चरने के लिए छोड़ दिया था। वे भागने न पाएँ इसके लिए उनकी टागों को रस्सियों से इस तरह बांध रखा था...कि वे चल तो पाएँ पर फर्राटे से दौड़ न सकें। इसके बावजूद घोड़े अपनी मस्ती में घास चरते हुए कभी ज़मीन पर पलटी मार कर अपनी थकान उतार लेते...तो कभी हिनहिनाते हुए एक दूसरे पर दाँतों और लातों से हमला: कर बैठते। पेड़ों की छाँव तले सुस्ता रहे घोड़े वाले वहीं से ऊँची आवाज़ में उनका नाम लेकर फटकार देते...तो वे भी किसी आज्ञाकारी बच्चे की तरह फिर से घास चरने लग जाते।

घोड़े लादने वाले लादी भी इस वक़्त फुर्सत में थे। कोई लेटे-लेटे बीड़ी के सुट्टे ले रहा था...तो कोई घोड़े की नंगी पीठ पर उभरे ज़ख़्मों पर तेल में मिली हल्दी का लेप लगा कर ज़ोर से पीठ थपथपा देता। सामान ढोते हुए घोड़ों की पीठ पर इस तरह के लागे लगना आम बात होती है...जिसका उपचार भी आसान है। मगर घोड़े की पीठ पर घाव हो जाने से वहाँ पर बाल नहीं आते और ज़ख़्म अपने निशान छोड़ देता है। पहाड़ की पगडंडियों पर घोड़ों को चलने में दिक़्क़त न हो।

इसलिए नाल लगाने वाला लुहार भी वहाँ पहुँच गया था। दरांती से उनके खुरों को खुरच कर नाल फिट बैठाकर वह बड़ी-बड़ी कीलें ठोंक रहा था। लकड़ी के टुकड़े पर निहाड़ी से उनके बढ़े हुए नाखुन काट रहा था। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान घोड़े वालों और घोड़ों के बीच आपसी समन्वय देखने लायक़ था।

मेरी उनसे पहले से ही जान-पहचान थी। और यहाँ पर पिता जी की पुरोहिताई भी काम आई। आओ पंडित जी यहाँ बैठो—एक लादी ने घोड़े के असबाब से कंबल निकाल कर उसका बिछौना बना दिया। मेरे बैठते ही दूसरे ने सवाल किया—पंडित जी भर दोपहर में यहाँ कैसे आना हुआ।

—घोड़े ख़रीदने हैं। मैंने भी बैठते ही बात शुरू कर दी—क्या? क्या कहा आपने। उनका समवेत स्वर उभरा...मानो उन्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ। पंडित जी क्या गप्प मारते हैं आप भी। पुरोहित का बेटा होकर घोड़े चलाएँगे आप...फिर भी अगर आपने ख़रीदने ही हैं तो इनमें से छांट लो आपको कैसे घोड़े चाहिए...वो जो नीले रंग का घोड़ा है ये लाहुली गुंठ है। डेढ़ कुंटल का बोझ उठाकर भी पहाड़ की चोटी पर पहुँच कर ही दम लेता है। मैंने एक नज़र दूध से सफ़ेद उस घोड़े पर डाली...कद-काठी मजबूत और देखने में भी सुंदर लग रहा था। मैं सोचने लगा—अगर इसकी पीठ पर बैठ जाओ तो ये हवा में बातें करने लगेगा। बचपन में दादी से सुन रखा था कि नीले रंग के घोड़े को देवताओं का वाहन माना जाता है। गुग्गा जहार पीर हो या फिर नारसिंह देवता दोनों की सवारी नीला घोड़ा होता है। कई बार पिताजी की किताबें पलट कर देखी तो उसमें छपे ख़ूबसूरत चित्रों में सफदे रंग के घोड़े देवताओं के रथ में जुते हुए देखे। महाभारत में तो भगवान कृष्ण अर्जुन के सारथी बन गए थे। उनके सारथी बनने पर तो पिताजी को कोई एतराज नही पर मेरे घोड़े चलाने पर घर में बवाल खड़ा कर देंगे।

मेरी तंद्रा को भंग करते हुए घोड़े वाला दूसरे घोड़े की ओर इशारा करके बोला—और वो जो काले रंग बच्छेरू है...बड़ा समझदार जानवर है...बर्फ़ के बीच भी रास्ता ढूँढ़ लेता है। अब बताओ आपको कौन सा घोड़ा पसंद है। मैंने मुद्दे की बात पर आते हुए कहा—दरअसल मैं घोड़े ख़रीदने नहीं.. आप लोगों से मदद माँगने आया हूँ।

—कैसी मदद चाहते हैं आप पंडित जी?

—एक दिन के लिए अपने-अपने घोड़े आप बैंक तक ले चलें बस। आपने बैंक वालों के सामने सिर्फ़ इतना ही कहना है कि ये घोड़े मुझे बेच दिए हैं। बाक़ी सब मैं सँभाल लूँगा।

—आप हमारे पुरोहित हैं आपके लिए इतना काम तो कर सकते हैं...पर यहाँ

से बैंक जाने और फिर वापस आने में पूरा ध्याड़ा ही लग जाएगा। उनमें से एक घोड़े वाले ने कहा—हमारी तो पूरी ध्याड़ी टूट जाएगी।

—इसकी फ़िक्र मत करो। बात को सिरे चढ़ते देख मैंने झट से कहा—आपकी जितनी दिहाड़ी बनेगी उसे मैं दे दूँगा...आप लोगों का नुकसान नहीं होगा। और वे दो हज़ार लेने पर वे लोग राजी हो गए।

...दूसरे दिन। बैंक के खुलते ही हम लोग घोड़ों समेत बैंक में दाखिल हो गए। पक्के फर्श पर घोड़ों के चलने की घट..घट...घट..की आवाज़ से बैंक में अफरा तफरी मच गई। मैनेजर, बड़े बाबू और अन्य कर्मचारी अपनी-अपनी सीट से उठ कर आ गए—ये क्या तमाशा है...घोड़े बैंक के अंदर क्यों लाए...निकालो बाहर। मैनेजर आग बबूला हो उठा। इतने में एक घोड़े ने लीद भी कर दी थी। मैंने बड़े बाबू की ओर इशारा करते हुए कहा—इन्होंने कहा था कि घोड़े बैंक में लाने होंगे, तभी मिलेगा लोन।

—आप घोड़े बैंक से बाहर निकालो...लोन आपको मिल जाएगा। मैनेजर के आश्वासन देने पर मैंने घोड़े वालों को बाहर जाने का इशारा किया...वे घोड़े वापस ले गए।

दो हज़ार रुपए वादे के मुताबिक़ घोड़े वालों को अदा करने के पश्चात मेरे पास तेईस हज़ार रुपए बच गए थे जिन्हें सँभाल कर रखना ही अब मेरे लिए मुसीबत थी। इनमें से कुछ पैसे किताबों के बीच छिपा कर रखे...तो कुछ सिरहाने का कोना फाड़ कर उसमें ठूँस दिए। इस राज के बारे में अब न तो माँ को बता सकता था...किसी और से भी इसका ज़िक्र नहीं किया सकता था। हाँ...एक क़रीबी दोस्त ने अपना कारोबार शुरू करने के लिए मदद माँगी तो चुपचाप दस हज़ार रुपए उसे थमा दिए। शेष बचे पैसों की हिफाजत करना भी मेरे लिए ज़रूरी था...वरना बैंक की किस्तें न भरने पर बैंक निलामी का फरमान निकाल सकता था। एक महीने तक पैसों की हिफाजत ऐसे की जैसे दंद कथाओं में ख़ज़ाने की हिफाजत कोई बड़ा फनीयर साँप करता है। मेरी हालत भी कुछ ऐसी ही थी। रोज़ रात को कमरे की चिटकनी अंदर से बंद करके पैसों को गिन कर तसल्ली कर लेता था। इसके बाद ही मैं सो पाता था।

एक महीने बाद मैंने बैंक में जाकर चार किस्तें एक साथ ही जमा करवा दी। मैनेजर ने पूछा तो कहा—काम अच्छा चल रहा है...इसलिए सोचा जितनी जल्दी पैसे वापस हो जाए उतना अच्छा है। बाद में किसी और प्रोजेक्ट के लिए लोन ले सकता हूँ।

मैनेजर उस दिन अच्छे मूड में था। मेरे लिए चाय मँगवा ली। बाहर निकला

तो बड़े बाबू ने लैजर से नज़र उठाते हुए पूछा—और सुनाओ कैसे हो।

—जी बस ठीक हैं ...आपकी दया-दृष्टि चाहिए और क्या।

—दया तो ऊपर वाले की चाहिए। वह बोला—घोड़े कैसे हैं।

—चल रहे हैं। मैंने लापरवाही से जवाब दिया।

मगर उसने हकलाते हुए जैसे मुझ पर कटाक्ष किया—हाँ...हाँ...चल गए घोड़े...चल गए...चल गए घोड़े। उसकी इस बात से मैं तिलमिला उठा था। मगर अपने गुस्से पर काबू पाते हुए वहाँ से निकल गया।

इस तरह छह महीने में मैंने आधे से ज़्यादा क़र्ज़ अदा कर दिया था। बैंक का मैनेजर भी हैरान था—लोन की क़िस्तें बड़ी जल्दी-जल्दी लौटा रहे हो...लगता है काम धंधा अच्छा चल रहा है।

—हाँ काम-धंधा ठीक चल रहा है। मैंने कहा—मुझे तो अब पता चला इस धंधे में तो कमाई बहुत है...और फिर क़र्ज़ तो लौटाकर ही चुकता होगा।

—आपका का केस हमने एक मॉडल के रूप में हैड आफ़िस को भेजा है। मैनेजर ने मुझे सूचित करते हुए कहा—आपका उदाहरण बेरोज़गार युवाओं के आदर्श बनेगा...पढ़े-लिखे होकर आपने साबित कर दिया कि आदमी मेहनत करे तो सफल अवश्य होता है...कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता है। हो सकता है हैड आफ़िस की टीम आपका इंटरव्यू लेने भी आए। मैनेजर ने अपनी ओर से मुझे ख़ुशख़बरी दी। मगर मेरे लिए तो यह मनहूस समाचार था। जिस राज को मैं अब तक घर वालों से छुपाए हुए था...अब उसका पर्दाफाश होकर रहेगा। पिताजी जी का गुस्सैल चेहरा मेरी आँखों के सामने घूमने लगा। मुझे लगा जैसे मेरे पैरों तले की ज़मीन खिसकने लगी है...और मैं किसी गहरी और अंधेरी खाई में गिर जाऊँगा। अब मुझे अपने फ़ैसले पर पश्चाताप होने लगा था। मेरा बदन पसीने से तर हो गया था...टाँगों में कँपन सा महसूस होने लगा था...कुछ देर वहाँ और खड़ा रहता तो हो सकता था मै ज़मीन पर गिर जाता। मैनेजर से विदा लेकर मैं वापस लौट आया था।

और एक सप्ताह बाद बैंक वालों की एक टीम मुझे ढूँढ़ती हुई मेरे गाँव पहुँच गई। चाय की दुकान करने वाला श्याम सिंह मेरा लंगोटिया यार था। उसे मैंने पहले से ही बता रखा था कि इस तरह बैंक वाले मुझे ढूँढ़ने आएँ तो उन्हें घर का रास्ता दिखाने के बजाय अपने पास बैठाकर मुझे सूचित कर दे। उसने भी वादे के मुताबिक़ उन्हें अपनी दुकान पर बैठाकर चाय पिलाई और मुझे उनके आने की सूचना भेज दी। सूचना मिलते ही मैं श्याम सिंह की दुकान की ओर भागा। वहाँ मैनेजर और हैड आफ़िस से आए अधिकारी मेरा इंतज़ार कर रहे थे। मैनेजर ने बड़ी गर्मजोशी से उनके साथ मेरा परिचय करवाया।

—मेरे ख़याल से हमें आपके घर चलना चाहिए। उस अधिकारी ने बात शुरू करते हुए कहा। वहीं चल कर बात भी हो जाएगी और एक नज़र घोड़ों को भी देख लेंगे।

—घर जाने से कोई फायदा नहीं है। मैंने अपनी घबराहट को छिपाते हुए कहा। जो भी बात करनी है यहीं कर लेते हैं।

—नहीं हम घोड़े भी देखेंगे...उनके साथ आपकी फोटो लेंगे तभी अच्छी सक्सेस स्टोरी बनेगी। उनमें से एक अधिकारी बोला। मगर मैं उन्हें किसी भी क़ीमत पर घर नहीं ले जाना चाहता था। उन्हें टालते हुए मैंने कहा—घोड़े तो घर पर हैं नहीं।

—क्यों...नहीं है...आपने घोड़े ख़रीदे भी हैं कि नहीं? बड़े बाबू की तरह शंका प्रकट करते हुए उसने कहा—घोड़े हैं तो घर ही होने चाहिए ...जब तब बैंक का लोन है तब तक तो कोई भी आकर चैक कर सकता है।

—घोड़े हैं कोई गाय-भैंस नहीं जो उन्हें खूंटे पर बांधकर रखो। मैंने तर्क का सहारा लिया—गाय-भैंस खूंटे पर बंधी रहे तो दूध देती है। मगर घोड़े तो चलते रहने चाहिए...तभी कमाई होती है। अब मेरी बात उनकी भी समझ में आ गई थी।

—बात तो आपकी भी सही है...तो फिर कहाँ हैं घोड़े...वहीं चल पड़ते हैं।

—उस धार के पीछे। मैंने सामने वाली पहाड़ी की ओर इशारा किया। वहाँ पर सरकारी बिल्डिंग का काम चल रहा है। पत्थर ढोने का ठेका लिया है...कोई महीने भर का काम है। मैंने कहा। पहाड़ की ऊँचाई को देख कर...उनका घोड़े देखने का उत्साह ठंडा पड़ गया था। और वे ज़्यादा कुछ बात किए बिना ही वहाँ से वापस लौट आए थे।

बैंक में अंतिम किस्त जमा करवाने के बाद मैं ख़ुद को हलका-फुलका महसूस कर रहा था। जैसे कोई भारी बोझ मेरे सिर से उतर गया था। जिस सबसिडी के चक्कर में यह सब किया था...वह भी ब्याज की भेंट चढ़ गई थी। ...घोड़े वालों को भी वादे के मुताबिक़ पैसे देने...और बीडीओ आफ़िस के बाबुओं का हिस्सा देने के बाद सिर्फ़ यही जमापूँजी मेरे पास शेष बची थी। घर वापस लौटते हुए रास्ते में वनफूलों की महक जंगल की हवा में खुलकर मदहोश कर रही थी...पहाड़ की पगडंडी से गुज़रते हुए घोड़े-खच्चरों के गले में बजती घंटियों का संगीत जंगल के सन्नाटे में खलल डाल रहा था। जो अब धीरे-धीरे दूर होता जा रहा था। रास्ते में मुझे घोड़े का टूटा हुआ नाल मिला...उसे घर के दरवाज़े पर लगाकर बुरी नज़र से अपने घर को बचाना चाहता था। पगडंडी के रास्ते धार की चढ़ाई चढ़ने लगा...शाम का अंधकार बढ़ने से पहले ही मैं घर पहुँचना चाहता था।

मशाण नाले का प्रेत

चमारों की बस्ती से थोड़ा हटकर धार की तराई में है मशाण नाला। अब इसका नाम मशाण नाला कैसे पड़ा? जितने मुँह उतनी भाखा...आसपास के गाँवों का शमशान घाट होने की वजह से बड़े-बुजुर्ग इसे मसांकड़ी कह कर पुकारते हैं। और नाले को मशाध नाला। भरी दोपहर और शाम ढले बच्चों व महिलाओं को यहाँ से अकेले न गुज़रने की हिदायत है। क्या पता कौन सी प्रेतआत्मा उनकी मासूम देह पर हमला कर बैठे? और मशाण नाले के साथ लगती पहाड़ी के पीछे ही है बड़ा गाँव...एक भरा-पूरा और ख़ुशहाल गाँव। अंदर की जाति के लोग खस, ब्राह्मण, कनैत, तरखान, कोली और लुहार इस गाँव में है...नहीं हैं तो केवल चमार। मगर बुजुर्गों ने उन्हें भी अपने ही क़रीब बसा रखा है...बस एक हाँक डालने पर बुलाया जा सकता है उन्हें...धार के ठीक परे चमारों की बस्ती है। ग्रामीण समाज की यह व्यवस्था सदियों पुरानी है...मगर समय के साथ समाज की इन रस्मों-रिवाज की ऊँची मिनारों में अब दरारें आने लगी हैं...पर इनके अवशेष आज भी मौजूद हैं...पहले नीच जाति के लोगों का साया भी पड़ जाता तो ब्राह्मण हो चाहे खस, राजपूत सबको दोबाऱा स्नान करके अपने आपको पवित्र करना पड़ता ...और नहीं तो गंगाजल और गाय के गोमुत्र का छिड़काव कर काम चला लेते थे।

मगर आज हालात बदल गए हैं। बाहर की जाति के लोग अब गाँव में प्रवेश कर सकते हैं...मगर उनकी सीमा घर के आँगन तक ही है...उससे आगे एक क़दम भी नहीं। वे पणिहाँद से स्वंय पानी नहीं पी सकते...देवता के मंदिर की चौखट तक जाना भी वर्जित है। यह सब ऊँची जाति वालों का एकाधिकार ही है। इसके बावजूद गाँववासियों का गुज़ारा इनके बिना संभव नहीं था...अब मरे हुए डंगर को अंदर की जाति वाले थोड़े उठाएँगे? इसके लिए तो चमार ही चाहिए, जो पशु को रगड़ कर मशाण नाले तक ले जाये...उसकी खाल उतार उनके लिए पौले-पोलड़ी बनाकर दे...बदले में उन्हें गुजारे लायक़ अनाज खलोथी के रूप में दिया जाता है।

बड़ागाँव में आज भी कोई जानवर मरा था...मशाण नाले में जानवर की खाल उतार कर चमार गुजारे लायक़ मांस अपने साथ ले गए थे...आज उनके घर में भी दावत होगी...मांस के साथ भात भी बनेगा और किकर की अपने हाथ से निकाली दारू भी ख़ूब उड़ेगी। बाक़ी सब वहीं गिद्ध, कुत्तों और गीदड़ों के लिए छोड़ दिया था। इधर, मृत डंगर के अस्थि पिंजर में फँसे मांस के लोथड़ों को हथियाने के लिए कई दिनों के भूखे गिद्धों और कुत्तों के बीच लुक्का-छुप्पी का खेल जारी था...कभी डैने फैलाकर गिद्ध डंगर की सफ़ेद हड्डियों के बीच फंसे मांस को अपनी तेज़ नुकीली चोंच से नोंचने में कामयाब हो जाते तो कभी भौं-भौं करते गाँव के आवारा कुत्ते उनके इस प्रयास को विफल कर देते। बड़ा विचित्र खेल था यह भी। दोनों तरफ़ पेट की आग बुझाने के लिए संघर्ष तारी था...रोज़ी-रोटी का यह संघर्ष आदमी ही नहीं जानवरों में भी है...फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि जानवर केवल पेट भरने के लिए संघर्ष करते हैं और आदमी तो अपने अहंकार की पूर्ति के लिए यह सब करता है...जो कभी ख़त्म ही नहीं होता है।

मशाण नाले के उस पार अपनी झोंपड़ी में बैठा झगड़ू चमार यह खेल देख रहा था...कभी वह मन ही मन कुढ़ता तो कभी अस्तित्व के इस विचित्र खेल को बड़े ही उत्सुक भाव से देख हँसने लगता। अभी थोड़ी देर पहले वह मरे हुए डंगर को इस जगह पर लाने वाले चमारों से झगड़ पड़ा था—ओये आप लोगों को भी यही जगह रह गई है क्या...कहीं और जगह पर नहीं कर सकते इस काम को? दिन भर चील और कुत्ते चैन से बैठने नहीं देते और रात को गीदड़ नींद हराम कर देते हैं।

मगर उसकी बातों पर डंगर की खाल उधेड़ने में व्यस्त उन लोगों ने ध्यान नहीं दिया...वे बड़ी तल्लीनता से अपने काम में जुटे रहे...मानो झगड़ू का उनके लिए कोई वजूद ही नहीं। अपना काम निपटा कर नोखू ने उसे चिढ़ाने के लिए हाँक लगाई—ओये झगड़ू तेरे को भी रहने के लिए यही जगह बची थी...अच्छा खासा घर-बार छोड़ अधमसाणिए की तरह इस ढाँक में रहने लगा, तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है?

तभी दोहली कह उठता है—अधमसाणियाँ नहीं भाई, ये तो इस मशाण नाले का प्रेत है ...प्रेत...जहाँ कोई नहीं रहता वहाँ यह बैठ गया है...हा-हा-हा। एक साथ उन चारों का समवेत ठहाका गूँज उठा...जो झगड़ू को विष वाण की तरह चूभने लगा...जिसके दर्द से वह बिलबिला उठा था।

नोखू और उसके साथी ने तो यह बात बड़े ही सहज भाव से कह दी थी...और अपने साथ डंगर की खाल और अपने-अपने हिस्से का मांस गठरियों में बांध कर हँसते हुए चले गए। मगर झगड़ू तो उनके इस कटाक्ष से तड़प उठा था...उनकी हँसी से दिल पर लगी चोट की टीस रेशा-रेशा उसे निचोड़ने लगी...मानो

मशाण नाले के गिद्ध मरे हुए डंगर को नहीं बल्कि उसके ज़िंदा जिस्म को अपनी घुमावदार तीखी चोंच से नोंच रहे हों।

आवेश में झगड़ू एक बड़ा सा मिट्‌टी का ढेला उठाता है और ज़ोर से उस तरफ़ फेंक देता है...जहाँ गिद्ध और कुत्तों के बीच मांस के लोथड़ों के लिए छापामार युद्ध जारी था...मशाण नाले का प्रेत कहते हैं साले...झगड़ू को अधमसाणियाँ कहते हैं। झगड़ू का निशाना अचूक था। ढेला एक कुत्ते की टाँग पर जा लगा वह क्लीं...क्लीं...क्लीं के करुणामय रुदन के साथ लँगड़ाता हुआ भाग गया। अचानक हुए हमले से गिद्ध भी सतर्क हो गए...अपने बड़े-बड़े डैने फैला कर रनवे पर दौड़ते जहाज की तरह एक तरफ़ भागे...पर शिकार को छोड़कर वे भी उड़ते नहीं हैं।

झगड़ू गुस्से में एक के बाद एक कई पत्थर उस दिशा में फेंकता रहता है, मानो वह नोखू और उसके साथियों पर निशाना साध कर उन्हें लहुलुहान कर रहा हो। ऐसा कई बार हुआ है, जब झगड़ू को जलालत और अपमान के घूंट पीने पड़े...कभी अपने लोगों ने तो कभी ऊँची जाति वालों ने उसके अस्तित्व को झकझोर कर रख दिया...कभी उसे लगता कि नीची जाति में पैदा होने से बेहतर होता वह कुत्ता ही बन जाता...तब उसे न तो नीची जाति वालों के घर जाने से रोका जाता और न ही ऊँची जाति के लोग उससे इतनी घृणा करते...यह घृणा नहीं तो और क्या है?

हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ ही वह स्मृतियों के जंगल में भटकने लगता है। इधर झगड़ू का घर छोड़ना सब के लिए चर्चा का विषय बन गया था। मशाण नाले के सामने टेकरी पर उसकी ज़मीन थी...जहाँ उसने झोंपड़ी डाल रखी थी।

उसके घर छोड़ने की बात पंख फैलाकर गाँव की चौपाल, पणिहाँद और खेत की मेढ़ पर चटकारे लेकर सुनाई जाती। झगड़ू का घर छोड़ना लोगों के लिए अजूबा था...ऐसा कर मानो उसने अपने वजूद से भी बड़ा निर्णय ले लिया था। झगड़ू अपने गाँव में ही नहीं बल्कि आस-पास के गाँवों में लोकप्रिय था। उसकी सर्वप्रियता का कारण महज ढाई-तीन फुट ऊँचा क़द, सफाचट सर, उभरा चेहरा और धंसी आँखें ही नहीं बल्कि उसके छोटे-छोटे हाथ थे...जिनकी उंगलियों और अंगूठे की लंबाई एक बराबर थी...मगर उसके हाथों में ऐसा हुनर था कि फटा हुआ जूत्ता भी एकदम नया सा लगता।

इसके अलावा एक और बात, झगड़ू अव्वल दर्जे का स्वाँगी था...लोग उसकी शक्ल सूरत पर हँसते थे और वह लोगों पर...अपने स्वाँग के ज़रिए वह लोगों और सामाजिक व्यवस्था पर कटाक्ष करता था। लोक नाट्य बांठड़ा का प्रमुख पात्र झगड़ू जहाँ भी जाता लोग उसके स्वाँग देखने उमड़ पड़ते ...तब उसका रुतबा किसी खस, ब्राह्मण, कनैत आदि से बड़ा होता...वैसे स्वभाव का मस्तमौला था वह।

सुबह चार बजे उठकर स्नानादि करके पूरे मनोयोग से वह भगवान का भजन किया करता...पर उसकी इस बात पर भी लोगों को ऐतराज था...आम लोगों में यह धारणा थी कि झगड़ू डैण मंत्र जानता है...उसकी आँखों में देवता है...तभी तो वे लाल सी रहती हैं। वह चमार गड्ढा झंगारता है। मगर लोगों की इस बात की उसे परवाह नहीं थी।

—किसी के घर आग नहीं लगाता झगड़ू...सब उसके पास आते हैं जूत्ते बनवाने के लिए...वह कहता—मेहनत करता हूँ तो पैसा लेता हूँ यूँ ही मुफ्त में किसी से कुछ नहीं लेता। बात झगड़ू के घर छोड़ने की लगी थी।

अभी कुछ दिन पहले उसका लंगोटिया यार सौजू उसे मिला था...उसने भी घर छोड़ने के बारे में पूछा तो वह बात को हँसकर टालते हुए बोला था—यहाँ मशाण नाला नज़दीक ही है भाइयों को फूकणें के लिए दूर नहीं ले जाना पड़ेगा...सौजू के ज़ोर देने पर उसने अपने मन की बात कह डाली थी—जिन भाइयों को ख़ून-पसीना एक करके पढ़ाया-लिखाया आज...उनको मेरे काम से शर्म आने लगी है...झगड़ू के मन का अवसाद दोस्त के सामने शब्दों के रूप में बाहर निकल आया था।

—वे लोग तो बड़े अफ़सर बन गए हैं...अब उन्हें झगड़ू और उसका काम दोनों ही घटिया लगने लगे हैं...पर तू ही बता मेरे भाई...उनके बड़ा बनने से मैं तो नहीं बदला...मैं तो वही झगड़ू चमार ही हूँ...जूते नहीं बनाएगा तो झगड़ू बदल जाएगा? रहेगा तो वही झगड़ू ही न? कुछ देर खामोश रह वह फिर बोल उठता है—मैं तो यही जानता हूँ कारीगर को अपना पेशा नहीं छोड़ना चाहिए...यही उसकी पहचान है और इसी में इज्जत भी है...मैं कुछ और कर नहीं सकता और बिना काम के रह नहीं सकता...मैंने उनको बोल दिया है झगड़ू अभी ज़िंदा है मरा नहीं।

सौजू उसकी हिम्मत बंधाता है—कोई बात नहीं झगड़ू भाई सगे भाई साथ नहीं तो क्या हुआ, हमारा भाईचारा बना रैहणा चाहिए...किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो बेझिझक बोलणा। सौजू ने लगे हाथ झगड़ू को अपने नए घर की प्रतिष्ठा के मौक़े पर धाम खाने के लिए बुलाया था...दोनों बचपन के दोस्त थे...चाँदपुर धार में कई सालों तक दोनों एक साथ डंगरे चराते थे। तब दोनों के मन में कोई भेदभाव नहीं था...साथ-साथ नालें में नहाते थे...लोगों के खेतों से चुराई मक्की एक साथ भूनकर खाते...और सौजू अपने घर से लाए बटूहरू और पतरोड़ू उसे भी देता और दोनों बड़ी सी चट्टान पर बैठ कर दपैहरी खाते थे...बड़े मजे के दिन थे वे भी। उसे याद है दोनों यार सामने की पहाड़ी पर डंगर चराने आई लड़कियों से छेड़-छाड़ करने की गरज से बालो और लामण लोकगीत गाकर रोमांटिक अंदाज़ में अपने प्यार का इजहार करते थे...बाद में सौजू की शादी तो उसकी पसंद की लड़की बिमला से हो

गई...मगर झगड़ू का तो दिल टूट गया...जिस कमला को वह चाहता था उसके बाप ने उसकी शादी कहीं और कर दी।

अब इतने सालों बाद उसके यार ने उसे याद किया। वह कैसे नहीं जाता? सौजू का गाँव बड़ागाँव से तीन किलोमीटर दूर पहाड़ी के उस पार बसा था...झगड़ू ने कई दिनों से सँभालकर रखे नए कपड़े निकाले और चल दिया सौजू के गाँव की ओर...सर्दियों के दिन और आसमान में घने बादल थे...कभी भी बर्फ़ गिर सकती थी...ऐसे में शाम को अकेले लौटना तो संभव नहीं था। इसलिए वह लांहग का कोट और एक पुराना सा दोहड़ू भी झोले में डाल कर ले गया था। वह सौजू के घर पहुँचा तो वहाँ पर पहले से ही सैकड़ों लोग मौजूद थे। गाँव के दो देवता भी उसने बुला रखे थे...नए घर में देवताओं के प्रवेश करवाने से पहले घर के छप्पर से देवताओं के रथों के ऊपर से बकरे फेंके गए। दूसरी तरफ़ दराट लिए खड़े व्यक्ति एक ही वार से बकरे की मुंडी धड़ से अलग कर देते। आँगन में बकरे का कटा हुआ धड़ तड़पने लगता, ख़ून का फव्वारा निकलता...सारा आँगन लहूलुहान...एक व्यक्ति बकरे की मुंडी उठाकर घर के दरवाज़े पर ख़ून के धब्बे लगा देता...बाक़ी लोग कटे हुए बकरे की टाँगों में चीरा देकर उसे डंडे पर उल्टा लटकाकर उसकी खाल उतारने लग जाते।

एक के बाद एक सात बकरे काटे गए...इसके बाद ही सब लोगों के लिए धाम तैयार की जानी थी। जिसमें डटकर मांस-भात परोसा जाना था...झगड़ू की निगाहें उत्सुकता से अपने बचपन के दोस्त ढूँढ़ने में व्यस्त थी। सौजू अभी देवताओं की आवभगत में व्यस्त था...देवताओं का गृहप्रवेश करवाने के बाद वह बाहर आया। पीले रंग की धोती और सिर पर गोल टोपी पहने वह सबसे अलग लग रहा था।

झगड़ू ने सोचा था कि उसका दोस्त उसे देखते ही गले लगा लेगा...जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मित्र सुदामा को सबके सामने गले लगाया था। अपने हाथों से उसके पैर धुलवाए थे...मगर सौजू उसे देख ख़ुश तो हुआ पर इतने लोगों के सामने वह न तो उससे गले मिला और न ही आगे बढ़कर उससे हाथ ही मिलाया।

झगड़ू को उसका यह बर्ताव अजीब सा लगा...ऐसा तो था नहीं उसका दोस्त, इसे क्या हो गया? मगर उसकी पीली धोती देख वह समझ गया कि देवता की पूजा के लिए उसने व्रत रखा होगा...इसलिए वह उससे दूर रह कर ही बात कर रहा है...सौजू ने दूर से ही उसका हालचाल पूछा और अपने बेटे को आवाज़ लगाकर कहा। जा अपने चाचू को ग्वायण में बैठा दे। सौजू का बेटा उसे घर से थोड़ी दूर गोशाला में ले गया...वहाँ पर पशुओं का जूठा घास एक ओर करके उसका बिछौना बना दिया।

झगड़ू बड़ी देर तक अपने दोस्त के इस बर्ताव को लेकर सोचता रहा...एक मन तो हुआ कि वह इसी वक़्त घर वापस लौट जाए...मगर दूसरे ही पल उसे

बचपन की दोस्ती का ख़याल आया...हो सकता है उसकी कुछ मज़बूरी हो, वरना वह तो ऐसा नहीं था...फिर देवता घर में आए हैं ऐसे में छुंह-छेड़ नहीं होनी चाहिए। लंबी साँस लेकर वह घास के बिछौने पर बैठ गया...गोबर की गंध से उसका सर चकराने लगा...गोशाला में बंधे डगर कभी रंभाने लगते तो कभी गोबर करने के लिए पीछे हटते तो वह उठ कर दरवाज़े के पास आ जाता...दिन भर का भूखा होने की वजह से अब पेट में चूहे कूदने लगे थे।

बाहर मौसम खराब था। बर्फ़ के फाहे आसमान से ऐसे झरने लगे थे मानो किसी ने कपास के ढेर से रूई की बौछार लगा दी हो। झगड़ू ने गोशाला का किवाड़ खोला...बाहर बर्फ़ की सफ़ेद चादर बिछ गई थी.। तभी लालटेन लिए कोई आता दिखाई दिया...वह कोई और नहीं उसका दोस्त सौजू ही था...एक हाथ में लालटेन और दूसरे में भात की थाली थामें वह गोशाला के दरवाज़े पर ऐसे प्रकट हुआ मानो वह किसी मेहमान को नहीं बल्कि हवालात में बंद क़ैदी को खाना देने आया हो। झगड़ू को ग्वायण के दरवाज़े पर खड़ा देख वह बोला—माफ करना झगड़ू भाई बड्डी-जड्डी में कष्ट तो सहना ही पड़ता है...ले अब तू खा ले। अभी तक मैंने भी नहीं खाया है...पहले अपने दोस्त को खिला लूँ...इसके बाद मैं भी देवता का प्रसाद लूँगा।

झगड़ू ने गोशाला की हालत देखते हुए कहा—भीतर तो बैठा नहीं जाएगा।

—हाँ...डंगरों के बीच तू कैसे बैठेगा? सौजू ने इधर-उधर देखा फिर खाने का थालू उसे पकड़ाते हुए बोला—मैं अभी आया...वापस लौटा तो अपने साथ छाता और अंगीठी ले आया...गोशाला के बाहर बर्फ़ पर ही बड़ा सा पत्थर रख कर वह बोला—आजा मेरे भाई बैठ...खाना ठंडा हो जाएगा।

झगड़ू के पास अंगीठी रख वह ख़ुद भी छाता लेकर बैठ गया। उन दोनों के चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़ थी...अब भी हल्की बर्फ़बारी हो रही थी...और एक छतरी के नीचे बचपन के दो दोस्त ...दुनियादारी निभा रहे थे। मारे ठंड के झगड़ू के गले से कौर नहीं उतर रहा था...दोस्त का मान रखने के लिए वह खाना खा रहा था...सौजू उसकी मनोस्थिति को जानता था...बात शुरू करने की गरज से वह बोला—झगड़ू भाई तू सोचता होगा कि ये कैसी परौहणचारी हुई, पर क्या करें बड्डी-जड्डी में तो ऐसा चलता है। झगड़ू उसकी तरफ़ देख कर चुप रहा...और मांस का टुकड़ा मुँह में डाल कर उसे चबाने लगा। सौजू ने बात को जारी रखते हुए कहा—अब घर में देवता आए हैं...निचले पौड़े पर बजंतरियों को खाना खिलाया जा रहा है...उनमें भी कोली और लुहारों को अलग-अलग बिठाया गया है...दोनों ही जाति के लोग एक दूसरे का छुआ नहीं खाते...वहाँ अगर तुझे बैठा देता तो वे खाना छोड़ कर चले जाते...तू तो जानता ही है कि ये लोग तेरी जाति के लोगों के साथ भी

खाना नहीं खाते हैं...अब क्या करें समाज के कायदे-क़ानून हैं...इन्हें तोड़ा भी नहीं जा सकता...तू तो सब जानता है।

सौजू ने अपनी ओर से सफाई देने का प्रयास करते हुए कहा—थोड़ी सी ऊँच-नीच हो गई तो बिरादरी से बाहर कर देंगे ये लोग। अब झगड़ू से भी रहा नहीं गया—सबके लिए तेरे घर में जगह है पर झगड़ू के लिए नहीं...क्योंकि जाति का चमार जो ठहरा...यही न? कुछ देर चुप रह कर वह फिर बोला—मैं तुझे दोष नहीं दे रहा हूँ...दोष तो समाज की इस रीत का है भाई...जो आज भी आदमी से आदमी को जानवरों से भी बदतर व्यवहार करने पर मजबूर करती है। सौजू उसके तर्कों से निरूतर सा था—मेरी जाति का दोष यही है कि जानवरों की खाल उतारते हैं हम लोग...मगर हमसे बड़े अछूत तो तेरी जाति के वो राजपूत हैं...जो कितनी निर्ममता से बकरों की मुंडी धड़ से अलग कर देते हैं...और सुन ...बकरों की खाल तो वे भी उतारते हैं न...फिर उन्हें क्यों नहीं माना जाता है अछूत? जानवर तो जानवर ही होता है...फिर वो चाहे बकरा हो या भैंसा।

—तेरी बात तो सही है पर इसे मानेगा कौन? सौजू ने कहा—तुझे इस तरह खाना खिलाते हुए मेरा दिल भी ख़ुश नहीं है मेरे भाई ...पर तू जानता है समाज के नियम कायदों के साथ बंधा होने की वजह से लाचार हूँ मैं। झगड़ू ने उसकी बात का जवाब नहीं दिया...बस चुपचाप खाना खाता रहा।

झगड़ू को वह रात गोशाला में डंगरों के बीच ही बितानी थी। मगर गोबर की बदबू से उसका दम घुटने लगा...सुबह होने का इंतज़ार अब वह नहीं कर सकता था। उसने सौजू से विदा लेना भी उचित नहीं समझा...रात के अंधेरे में ही वह अपनी झोंपड़ी की ओर चल पड़ा। रास्ते में वह सोचने लगा, उसे न तो अपनों के बीच जगह मिल पाई...और न ही दोस्त के घर सर छुपाने को ठौर मिला...उसकी असली जगह तो यही मशाण नाला है...जहाँ वह अकेला प्रेत की तरह पड़ा रहता है...मशाण नाले का प्रेत है वह...झगड़ू का दिल हुआ कि वह ज़ोर-ज़ोर से सबको गाली दे...उसने एक-दो बार ऐसा प्रयास किया भी...मगर रात के अंधकार में उसकी आवाज़ की भटकती प्रतिध्वनि नाले से लौट कर उसे ही चिढ़ाने लगती...गहरे विशाद से घिरे झगड़ू को अंधेरे में ठोकर लगी और वह गेंद की तरह ढाँक से लुढ़क कर नीचे मशाण नाले में जा गिरा...अचेत। सुबह आसमान में उड़ते गिद्धों को देख लोगों ने अनुमान लगाया कि मशाण नाले में ढाँक से गिरकर कोई जानवर मरा होगा...मगर पास जाकर देखा तो वह झगड़ू था...जानवरों के अस्थि-पिंजरों के बीच उसका क्षत-विक्षत शरीर पड़ा था.।

वसुधा, 2007

जेठी

आसमान में मंडराती चीलों और गिद्धों को अक्सर बसाखू दोघरी के ऊपर से उड़ान भरते देखता। ...आम दिनों में तो उसे चीलों का इस तरह खुले आसमान में उड़ना अच्छा लगता...उसका भी मन करता कि उसे पंख लग जाए तो वह नीले आसमान में दूर-दूर तक उड़ता फिरे पंछियों की तरह...बचपन से वह ऐसा सोचा करता था। लेकिन भादो के काले महीने में उसे आसमान में उड़ती चीलों से डर लगता...वह तो ज़मीन पर पड़ने वाले उनके साये से भी दूर भागता था। धुंध के बादलों के बीच से अचानक प्रकट होते चीलों के झुंड उसके अंतर्मन में दहशत फैला देते...उसे लगता कि चीलों के रूप में डायनों का दल आसमान के रास्ते सीधे उसके गाँव पर हमला करने जा रहा हों और उनका निशाना गाँव के मासूम बच्चे होंगे।

हुक्के की नड़ी मुँह से लगाए वह लंबे-लंबे कश खेंच रहा था...उसके मुँह से धुआँ ऐसे निकल रहा था...मानो उसके अंदर बहुत कुछ जल रहा हो...धुएँ का एक गोला उसके गले में अटक गया...और ज़ोर की खाँसी के साथ उसकी आँखों में पानी भर आया। वह अपने अंदर की वितृष्णा और आक्रोश को जैसे धुएँ में उड़ा देना चाहता था। भादो महीने चीलों का गाँव के ऊपर मंडराना अच्छा नहीं है...यह आने वाले संकट की दस्तक भी हो सकती है।

—देयोआ...तू ही जाण क्या होगा इस गाँव का। बसाखू खांसते-खांसते बोल उठता है—रछया कर मेरे मालका तू रछया कर।

डायण वासा और कठयार के बीच ज़्यादा दूरी नहीं है...गाँव के साथ लगती पहाड़ी की चोटी पर है डायणवासा...जहाँ अकेला आदमी कभी नहीं जाता...बुजुर्गों का कहना है कि गाँव का एक आदमी यहाँ गया था...जो वापस नहीं लौटा था...कहते हैं यहाँ पर डायणियों का वास है...इसलिए इसे डायण वासा कहा जाता है...जहाँ इंसान नहीं देवता ही जा सकते हैं...वो भी भादो में डायणियों के साथ हार-पासा खेलने। ऐसी मान्यता है कि कठयार श्राप ग्रस्त गाँव है...तभी तो सात-

आठ साल की उम्र का होते-होते गाँव का कोई भी बच्चा स्वस्थ नहीं रहता...कभी-कभी तो गर्भवती महिलाओं पर भी इनकी झपट पड़ जाती है। ऐसे में गर्भवती या उसके बच्चे दो में से एक की मौत निश्चित होती है। बसाखू को याद है उसकी बहू की मौत भी डायणियों के प्रकोप से हुई थी।

कठयार गाँव में जवान होते बच्चों पर भी डायणियों की नज़र रहती है...पंद्रह-बीस साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते कोई बिरला ही इनके प्रकोप से बच पाता है...जो भी बचता है वो सिर्फ़ देवता की कृपा से। ऐसा देवता का गूर कहता है। जब देवता के गूर ने ऐलान कर दिया कि यह गाँव श्रापग्रस्त है और इस पर डायनियों का प्रकोप है...तो किसी की क्या मजाल जो इसका विरोध करे। बरसात के मौसम में गाँव का कोई बच्चा मियादी बुखार से मरता है...तो किसी की मौत जंगल में ढाँक से गिर कर होती है...किसी को हिंसक जंगली जानवर अपना शिकार बना लेते हैं। देवता का गूर कहता कि यह सब डायणियों की झपट की वजह से ही होता है।

इससे बचने का तरीक़ा भी वही सुझाता है। साजे के दिन वह मंदिर में गाँव वालों को मंत्रित सतनाजा देता है...जिसे गाँव वाले गोबर के साथ घर के दरवाज़े पर छाप देते हैं...जिससे डायणियों का प्रवेश घर के भीतर न हो। गाँव वाले इन दिनों घर के छप्पर पर पतरोड़ू और अन्य पकवान रख देते हैं...जिन्हें खाकर डायणियाँ ख़ुश हो जाए और अपने रास्ते निकल जाए।

बसाखु भी साजे के दिन देवता के मंदिर से सरसों के दाणे मंत्रवा लाया था...घर और दोहरी के दरवाज़े पर गोबर के साथ उसने यह रक्षा कवच लगा दिया था। ...और कुछ दाने उसने अपनी पोती जेठी की जेब में डाल रखे थे। वह सारा दिन इधर-उधर भटकती रहती है...क्या पता कब डायणियों का साया उस पर पड़ जाए...ऐसे में मंत्रित सरसों के दाने उसकी रक्षा करेंगे...उसका बाल भी बांका नहीं होगा।

जेठी उसकी इकलौती पोती थी। बड़ी औलाद होने की वजह से बसाखू ने उसका नाम जेठी रखा था। उसके दो पोते भी थे...उन्हें वह डायणियों की झपट से नहीं बचा पाया था, मगर जेठी सात साल की हो गई थी। देवता की कृपा से उसका बाल बाँका नहीं हुआ था। उसकी उम्र के कई बच्चों की या तो मौत हो गई थी...या फिर उन्हें अपने रिश्तेदारों के यहाँ पढ़ने के लिए भेज दिया था...जो ऐसा नहीं कर पाए थे उन्होंने शहर में लोगों के घरों में बतौर घरेलु नौकर भेज दिए थे। गाँव के बचपन का सौदा करने में देवता का गूर भी अहम भूमिका अदा करता। ...मगर जो भी बच्चा एक बार शहर गया वह वहीं का ही होकर रह गया...कोई बिरला ही वापस लौटता।

...अब कठयार गाँव के बारे में बुज़ुर्गों का कहना है कि रियासत के जमाने में गाँव की सारी ज़मीन शहर के लोगों की थी...मंडी के खत्री व ब्राह्मण जिन्हें बझिया

कहा जाता था...और इस गाँव के बाशिंदे बसणू। वे मुजारों के रूप में बझियों की ज़मीन की कास्त करते थे। गाँव में हवेलीनुमा बड़े-बड़े मकान इन बझियों के थे...जिन्हें कठयार कहा जाता था...बस इसी के नाम से गाँव का नाम भी कठयार पड़ गया। मुजारा आंदोलन में कठयार वासियों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था...बसाखू भी शहर में आकर मुजारा आंदोलन के दौरान होने वाले धरने और जुलूस में हिस्सा लेता...जिसका हल उसी की ज़मीन के नारे लगाता। और भूमि सुधार कानून के बनते ही हल जोतने वाले किसान ज़मीन के मालिक बन गए। मगर शहर के बझियों की बगार से इस गाँव का रिश्ता नहीं टूटा है। पहले गाँव के बुजुर्गों ने बझियों के घरों में चाकरी की...अब इस शाप के चलते गाँव के बच्चे शहर में घरेलू नौकर बन गए हैं।

बसाखु उदास था। कल ही उसके बेटे सेवकू ने जेठी को स्कूल की मास्टरनी के साथ भेज दिया था। मास्टरनी भी उसके बझियों के ही ख़ानदान से थी...उसने अपने बुज़ूर्गों का हवाला देकर जेठी को बेटी की तरह पालने की बात कही थी। इस मामले में भादरू गूर ने बिचौलिया बन कहा था—बसाखू भाई बझियों के पास तो तैने भी चाकरी की है...अब तेरी पोती वहाँ पलने जा रही है...मस्टरयाणी इसे बेटी की तरह पालेगी...पढ़ाएगी-लिखाएगी...और अच्छा जैसा लड़का मिला तो शादी भी करवा देगी। ऐसा सोच बेटी तेरे अपने ही घर में है।

—पर बझयाणी ...अभी तो बेटी छोटी है...घर से दूर शहर में इसका जी नहीं लगेगा। बसाखू ने अपना विरोध दर्ज करने का प्रयास किया। मगर मास्टरनी ने उसे निरस्त करते हुए कहा—बाबा आप तो हमारे घर के आदमी हैं...ऐसा समझो इसे माँ की गोद मिल गई...अपनी बेटी की तरह रखूँगी इसे ...आप इसके बारे में कोई चिंता न करें। उसने अपने पर्स से कुछ पैसे निकाले और सेवकू की ओर बढ़ाते हुए बोली—अभी इन्हें रख लो फिर और दूँगी।

सेवकू ने बिना गिने ही नोट खिस्से में डालते हुए कहा—इसकी क्या ज़रूरत थी भैंजी...बाद में ले लेता। बसाखू को लगा कि जैसे उसके बेटे ने अपनी बेटी का सौदा कर दिया है...जैसे कोई भेड़-बकरी को कसाई के हवाले करने से पहले पैसे जेब में डाल लेता है।

उसके जाने के बाद वह अपने बेटे पर बिगड़ा—तुने तो बिन माँ की बेटी का सौदा कर दिया...तू बाप है या कसाई? बेटे ने दलील देते हुए कहा—बापू यह सब उसके भले के लिए ही तो किया है...फिर वह मास्टरनी भी कौन सी ग़ैर है...अपने ही बझियों की बहू है वो...ख़ुद भी तो तैने अपनी सारी जवानी बझियों के यहाँ बेगार करके ही बर्बाद कर दी।

—वो बात और थी बेटा...और वो टैम भी वैसा ही था...बसणू थे हम उनके...अगर ऐसा नहीं करते तो वे अपनी ज़मीन किसी और को दे देते। मगर अपनी जेठी...वह तो इस जंगल के दयार की बूटी है जो सिर्फ़ इस पहाड़ में ही फलेगी-फूलेगी...शहर की आबो हवा उसे रास नहीं आएगी...वह मुरझा जाएगी बेटा। सेवकू ने भी जैसे बाप की बातों की काट सोच रखी थी। उसे समझाते हुए वह बोला—बापू जेठी को भेजने का फ़ैसला मैंने सोच-समझ कर लिया है...उसकी ज़िंदगी बन जाएगी वहाँ...और देवता से भी मैंने इजाज़त ले ली है। ...गूर कहता है कि जेठी डायणियों के साये से दूर रहेगी तो उसका बाल भी बांका नहीं होगा।

—गूर तो हरामी है...जैसे चौबीस घंटे देवता उसी के अंदर घुसा रहता है। बसाखू का रोम-रोम गुस्से से काँप उठा—अगर गाँव के बच्चों को डायणियों के कोप का इतना ही ख़तरा है तो सबसे पहले वह अपने बच्चों को भेजे ...क्यों वह दूसरो के बच्चों को गाँव से बाहर भेजता रहता है...मैं तो कहता हूँ यह सारा परपंच इसी गूर का रचा हुआ है।

—ये परपंच नहीं है बापू...देवता का आदेश है...इसे तो मानना ही पड़ेगा। सेवकू ने कहा—याद है पिछले साल फागणू का जवान बेटा भालू के हमले में मारा गया था...और मस्तु की बेटी जंगल में घास लाने गई थी...ढाँक से गिर कर चिथड़े-चिथड़े हो गई। ब्रेस्तु का बेटा उल्टियों और टटियों से मर गया...गूर ने बताया कि उन सब पर डायणियों की तगड़ी झपट पड़ी थी।

—डायणियाँ खाये गूर और उसके टब्बर को। बसाखू ने उसे बीच में ही टोकते हुए कहा —जंगल में रहेंगे तो जंगली जानवरों का हमला तो होगा ही...और ढाँक से गिरना तो आम बात है...और रही ब्रेस्तु के बेटे की मौत की बात तो कितने सालों से अस्पताल बंद पड़ा है...इस इलाक़े में डाक्टर आने को राजी नहीं हैं...पिछले चुनाव में विधायक ने वादा भी किया था...मगर आज तक न डाक्टर आया न क़ंपाउंडर...चपरासी के सहारे चल रहा है अस्पताल...बीमारी में सही ईलाज न हो तो आदमी मरेगा ही। बसाखू जानता था कि बझियों के घर उसकी पोती को आराम नहीं मिल पाएगा। उसे याद है जब वह बझियों की चाकरी करता था तो सुबह से शाम तक आराम के लिए तरस जाता था...बड्डी बझयाणी बड़े प्यार से कहती—मयाँ बसाखुआ...तू ये काम करी लै और फिर आराम कर...मगर जैसे ही वह काम ख़त्म होता तो बझयाणी का एक और काम हाजिर होता...बस इसके बाद तू ख़ूब आराम कर...देर रात तक न उसके काम ख़त्म होते और न ही वह आराम कर पाता।

जेठी के लिए शहर एक अजीब ही तरह का मायालोक था। यहाँ न खेत...न घरों के आगे आँगन...झरनें...ठंडी हवाओं के झोंके कुछ भी नहीं था...और न ही कहीं

पर उसे देवदार के पेड़ नज़र आए। सड़क पर भेड़ों के झुंठ की तरह गाड़ियाँ और आदमी...इतनी भीड़ तो गाँव के मेले में भी नहीं होती। यहाँ बहुत कुछ वह पहली बार देख रही थी जो उसके गाँव में नहीं था। मास्टरनी का घर भी बहुत ही ख़ूबसूरत था...इतनी सारी चीज़ें उसने अपने गाँव में नहीं देखी थी...जेठी एक कोने में सिकुड़ी सी अपना झोला थामें हुए थी। मास्टरनी की बेटी ने उसे देखते ही मुँह चिढ़ाया—मम्मा ये किसे पकड़ लाई...इतनी छोटी सी है...क्या ये कर पाएगी घर का सारा काम?

—गाँव की लड़की है...बड़ी सख्त हड्डी होती है ये...काम करने की आदत है इसे...धीरे-धीरे सीख जाएगी सब।

मास्टरनी के घर जेठी के आने की सूचना उसकी सहेलियों को मिल गई थी। सबके लिए वह मानो अजूबा थी...कोई कहती—मैडम अच्छा किया छोटी लड़की को आप ले आई...बड़ी लड़कियों के तो अब नखरे बढ़ गए हैं...काम कम करती है...मेकअप ज़्यादा करती है...मेरी नौकरानी तो दिन भर फोन से चिपकी रहती थी...उसका चक्कर था किसी लड़के के साथ...जब उसके साथ भाग गई हमें तो तब पता चला। मैडम की जितनी भी सहेलियाँ थी...सबके अलग-अलग क़िस्से होते...पर वे नौकरों पर ही केंद्रित होते...मानो सब नौकरों के सताए हुए थे...मगर इसके बावजूद नौकरों के बिना उनका गुज़ारा नहीं था। जेठी को घर के हर छोटे-बड़े काम के अलावा...आने वाले मेहमानों के साथ सलीके से पेश आने का हुनर भी सिखाया गया था। मैडम के साथ बाज़ार से ख़रीदारी करने भी उसे जाना पड़ता...बाज़ार जाते समय वह उनके पीछे-पीछे झोला थामे रहती..जो भी सामान मैडम ख़रीदती वह उसके हवाले कर दिया जाता...वापस लौटने तक जेठी के झोले का भार काफ़ी बढ़ जाता। मगर कोई भी मदद करने को तैयार नहीं होता...करता भी क्यों—वे ठहरे मालिक और वह बेचारी नौकर...मालिक कभी नौकर का बोझ कम नहीं करता...भले ही वह मासूम...जेठी ही क्यों न हो।

दिन गुज़रते गए...और जेठी पर काम का बोझ भी बढ़ता गया...छोटी सी गलती पर उसे डाँट फटकार भी पड़ती। ऐसे में उसे घर और दादू की याद आने लगी...रात को अपने कमरे में अकेली सुबकती रहती...कोई पूछने वाला नहीं...कभी कभार मैडम का पालतू कुत्ता टॉमी उसके पास आ जाता...वह देर तक उसे देखती रहती जेठी को लगता कि इस घर में तो टॉमी की हैसियत उससे कहीं ज़्यादा है। वह बेधड़क किसी भी कमरे में आ जा सकता है...सभी उससे प्यार करते हैं...मगर कोई उसे प्यार से पुचकारता भी नहीं। उस के लिए तो इस घर में सभी पराये हैं...कोई अपना नहीं है...जिससे वह दिल की बात कह सकती कुछ सुना सकती।

जेठी इस घुटन भरे माहौल में उदास सी रहने लगी, मगर किसी से भी कुछ

कहने से डरती। घर से भी कोई उससे मिलने नहीं आया था...दादू के साथ वह बहुत ख़ुश थी। गाँव की यादों में खोई जेठी से एक दिन फूलदान टूट गया...फर्श पर शीशे के टुकड़े बिखर गए। फर्श पर बिखरे शीशे के टुकड़ों को देख जेठी सहम गई। मगर मैडम के साहब का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच गया। उसने आव देखा न ताव और जेठी पर टूट पड़ा—हरामजादी काम कम और नुकसान ज़्यादा करती है। उसने पास पड़े झाड़ू को उठाया और जेठी की धुनाई करने लगा। जेठी की चीखें घर की दीवारों में ही घुट कर दम तोड़ने लगी...आस पड़ोस के लोग जैसे इसके आदी ही थे। किसी ने उसे बचाने का प्रयास नहीं किया...उनके घरों में भी आए दिन नौकरों पर इस तरह के अत्याचार होते थे इसलिए कोई किसी के मामले में हस्तक्षेप नहीं करता था। पिटाई के बाद उसने जेठी को बाथरूम में बंद कर दिया। उस दिन उसे खाना भी नहीं दिया गया, उनका क़ीमती फूलदान जो तोड़ा था उसने।

उस दिन के बाद से जेठी को लगातार बुखार आने शुरू हो गए...उसका बदन तपने लगा...बार-बार पसीना आने लगा...वह दिन पर दिन कमज़ोर होने लगी। अब उससे घर का काम भी नहीं हो पा रहा था...मैडम ने एक दिन डॉक्टर को दिखाया तो बोले—वायरल बुखार है...इसे आराम की ज़रूरत है...कुछ दवाएँ भी दी।

जेठी कमरे में अकेली पड़ी नींद में दादू-दादू पुकारने लगी...मुझे दादू के पास ले चलो...मैं यहाँ नहीं रहूँगी...मुझे दादू के पास ले चलो। जेठी को इस तरह नींद में बड़बड़ाते मैडम की बेटी ने देख लिया...उसका दिल पसीज गया...माँ से जेठी को वापस गाँव भेजने को कहा—मम्मा...जेठी को इसके दादू के पास भेज दो, कुछ दिन वहाँ रहेगी तो शायद ठीक हो जाए—हाँ, ऐसा ही करते हैं...मास्टरनी ने कुछ सोचते हुए कहा—पर मम्मा...जेठी के जाने के बाद यहाँ का काम कौन करेगा?

मास्टरनी ने दार्शनिक अंदाज़ में कहा—तू नहीं जानती बेटा...गाँव में ऐसी बहुत सी जेठियाँ हैं..वे हमारे ही काम तो आएँगी...ये नहीं तो कोई और सही...एक दो दिन में ही नई नौकरानी की व्यवस्था हो जाएगी। इसके घर वालों को मैसेज भेज देती हूँ कि वे इसे यहाँ से ले जाए।

बसाखू के क़दम डायन वासा की ओर बढ़ते जा रहे थे...चढ़ाई चढ़ते हुए उसकी साँस फूलती जा रही थी...धुंध के साये में से धार की चोटी पर बड़ी-बड़ी चट्टानों का समूह किसी मजबूत क़िले की तरह नज़र आ रहा था...इसके पीछे ही डायनवासा था। बसाखू ने सुन रखा था कि डायनें...अप्सराओं की तरह ही सुंदर होती हैं और...वे जादुई महल में रहती है...जिसे आम आदमी नहीं देख पाता है। और वहाँ तक आम आदमी का पहुँचना भी संभव नहीं था...पहाड़ी की चोटी पर पहुँचने के लिए कहीं से भी कोई रास्ता नहीं था...डायनें तो यहाँ तक आसमान

के रास्ते उड़कर पहुँचती हैं...उन्हें ज़मीन पर बने रास्तों की क्या ज़रूरत...और...आम आदमी तो वहाँ जा ही नहीं सकता था। जो भी गया वो वापस लौटा ही नहीं...कहते हैं डायनें उसे अपना गुलाम बना लेती हैं...उससे प्यार करती हैं...उसकी आँखों में ऐसा सुरमा डालती हैं कि उसे महल के बाहर कुछ भी दिखाई नहीं देता। बसाखू को लगा कि अब वह डायनों की क़ैद में है...किसी ने उसके दोनों बाजुओं को मजबूती से पकड़ लिया हो...उसके पाँव धरती से ऊपर उठने लगे। अब वह हवा में था...आसमान की ओर उठ रही धुंध के बीच से उसे धरती पर कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। थोड़ी ही देर बाद वह एक आलीशान महल के अंदर था। वहाँ ख़ूबसूरत अप्सराओं सी औरतें मौजूद थी...परियों की तरह ही उनके पंख भी थे...महल के चौबारे से जब भी वे उड़ान भरती तो एक दम चील बन जाती। ...और जैसे ही चौबारे से अंदर महल में प्रवेश करती तो उनका वह भव्य रूप प्रकट हो जाता।

इस जादुई महल में आगे चल कर बसाखू ने एक तालाब देखा जो लाल रक्त से सराबोर था...और डायनें उसमें स्नान कर रही थी...उसने सुन रखा था कि खुद को जवान व ख़ूबसूरत और दीर्घायु बनाने के लिए डायनें यह सब करती है। उसने देखा कि आसमान के रास्ते आने वाली डायनें बच्चों को उठाकर ला रही है...और रक्त कुंड के पास ज़ोर से पटक देती...उनके लहू की धार सीधे उस कुंड में जा रही है...जहाँ डायनें स्नान कर रही हैं...उसने देखा कि दो डायनें उसकी पोती को भी उठा कर ले आई है...इससे पहले कि वे उसे ज़मीन पर पटक दे वह ज़ोर से चीखता है—इसे मत मारो...इसे छोड़ दो...ये जेठी है मेरी पोती...इसे छोड़ दो।

बसाखू औंधे मुँह पड़ा ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था...सेवकू ने उसे झिंझोड़ते कहा—क्या हुआ बापू...क्यों चीख़ रहे? कोई बुरा सपना देखा क्या? बसाखू पसीने से तर-ब-तर हाँफ रहा था। वे जेठी को ले गई। उसे मार देगी वो बेटा, मार देगी।

—कौन ले गई जेठी को बापू...वह तो मास्टरनी के पास है...कौन मारेगी उसे?

बसाखू ने एक नज़र कमरे पर दौड़ाई और फिर सेवकू से पूछता है—जेठी कहाँ है...उसे यहाँ ले आओ।

—वो शहर में है बापू, मास्टरनी के पास। सेवकू ने कहा—मैं तुझे बताना भूल गया...आजकल उसकी तबीयत ठीक नही है...मास्टरनी का बिकर भी आया था...तू कल सुबह शहर जा कर उसे ले आना। जेठी की बीमारी की बात सुन कर बसाखू चिंतित हो उठा...उसे लगा कि सपने में आने वाली डायन कहीं वो मास्टरनी ही तो नहीं है। वह सुबह तड़के ही उठकर शहर चला जाएगा और जेठी को वापस घर ले आएगा। फिर कभी वापस शहर नहीं भेजेगा।

वागर्थ, 2008

मेरे घर का दरवाज़ा

बसंत का मौसम कितनी बार आया और लौट गया। मगर इतने सालों के बाद भी उसके चेहरे पर वही सदाबहार मुस्कान कायम थी। वह बात करते हुए जब खिलखिलाकर हँस देती तो ऐसा लगता कि मानो फूलों की क्यारी महक उठी हो। उसकी मोतियों जैसी दंत पंक्ति बात-बात पर निकल पड़ती। बचपन की वह अल्हड़ सोमा आज सोमावती बन गई थी। उसे देखकर ऐसा लगता कि उसकी ज़िंदगी में आया पतझड़ कभी ख़त्म नहीं होगा। उसका जीवन भी पहाड़ की तरह जीवट और दुरूह है। उसके चेहरे की तरह पहाड़ भी दूर से देखने में लुभावने लगते हैं...और कुछ पल यहाँ गुज़ारना भले ही रोमांचक लगता हो...मगर यहाँ पर ज़िंदा रहने के लिए इन कठोर पहाड़ों से जूझना पड़ता है।...इन पत्थरीले पहाड़ों से आदमी कम...औरत ज़्यादा जूझती है। सोमावती भी मुँह अंधेरे से लेकर रात के सन्नाटे तक चुल्हे-चौके, ढोर-ढंगर, खेत-खलिहान...जंगल और पहाड़ सबसे जूझती है और शायद उसकी नियति भी यही थी।

आज इतने सालों बाद उससे मिलना हुआ था। स्मृतियों के कपाट एक के बाद एक खुलने लगे थे। चार भाइयों की इकलौती बहन सोमा...बचपन से ही मिलनसार, मेहनती और हँसमुख स्वभाव की थी। आठवीं तक की पढ़ाई गाँव के ही स्कूल में की थी। नौंवीं-दसवीं के लिए उसे गाँव के लड़कों के साथ घर से दूर जाना पड़ता था। पुराने जमाने में बने राणाओं के क़िले की पहाड़ी से होते हुए धार की तराई में दूसरी ओर उन दिनों हाई स्कूल था।

चार-पाँच पंचायतों के बच्चे टोलियाँ बनाकर स्कूल जाया करते थे। सोमा भी अपने गाँव की टोली के साथ स्कूल जाती थी। रास्ते में कच्चे आम, पलम और खुमानियाँ नमक के साथ चटकारे ले कर खाना उसकी टोली का शगल था। कभी फ़ुर्सत में सब लोग राणाओं के पुराने गढ़ का चक्कर भी लगा आते। गढ़ अब खंडहर बन गया था। दीवारें ढह गई थीं...उसके नीले पत्थर पहाड़ी की ढलान पर बिखरे

पड़े थे। बुजुर्गों से सुन रखा था कि राणाओं का यह गढ़ महाराजा रणजीत सिंह की सिख सेना के हमले के दौरान तहस-नहस हो गया था।

यह कोई सन् 1840 के आसपास की बात है...सिख जनरल बैंचूरा ने रियासत के अनेक क़िलों और गढ़ों पर हमला कर लूटपाट की थी...उसी के अवशेष के रूप में यह गढ़ भी था। गाँव वाले उस घटना को सिंग्हों का सिंघाणा कहते हैं। बच्चों का इस गढ़ के खंडहर में जाना मना था।

इसका कारण क़िले के खंडहरों में पाया जाने वाला वह विशालकाय साँप था। जो अक्सर लोगों को दिखाई देता था। गाँव वालों की मान्यता थी कि वह माया का साँप है...जो क़िले में दबे पड़े ख़ज़ाने का रक्षक है। पहाड़ की चोटी पर स्थित इस खंडहरनुमा गढ़ में लोग कम ही जाते थे। ...मगर सोमा की मंडली साल में एक आध बार ख़ज़ाने की खोज में वहाँ चली जाती। सोमा मन ही मन सोचती अगर उसे ख़ज़ाना मिल जाए ...तो वह अपने घर की सारी ज़रूरतें पूरी करेगी। और फिर सारे गाँव में उस धन को बाँट देगी...जिससे गाँव वालों की दरिद्रता दूर हो जाएगी...उसका गाँव भी ख़ुशहाल हो जाएगा। मगर ख़ज़ाना तो क्या मिलना था...पर घर वालों की डाँट ज़रूर खानी पड़ती थी।

गाँव में महिलाएँ धान की रोपाई, गोबर की ढुलाई और घास की कटाई जैसे सामूहिक कार्य मिलजुल कर करती हैं। एक दूसरे के खेतों में बिना पैसे लिए काम करना ज्वारी कहलाता है। काम के बदले काम का प्रतिदान। वैसे भी ज्वारी के बिना पहाड़ की खेती-करसाणी संभव नहीं है। इस तरह के सामूहिक श्रम में थकान भी कम होती है...और आपसी मेल-मिलाप से खेती-बाड़ी का काम हँसते-गाते निकल जाता है। और यही वक़्त होता है जब गाँव की बहुएँ अपनी ननंद-सास और देवरानी-जेठानी के क़िस्से एक-दूसरी को सुना कर मन हल्का कर लेती है।

सोमा भी इस तरह की ज्वारियों में जाने लगी थी। वह दूसरों के खेतों में जितने दिन काम करती उतने ही दिन गाँव की औरतें आकर उनका काम निपटा जाती। इसमें कोई छोटा या बड़ा नहीं होता और न ही अमीर और ग़रीब की भावना। खेत सबके हैं और खेत की मिट्टी में पसीना बहाये बिना बीज नहीं फूटता है। श्रम के बदले श्रम का प्रतिदान...पहाड़ों की सदियों पुरानी परंपरा है...जो कहावतो और लाकगीतों में ऐसी गुंथ गई है जैसे पसीने में किसान के बदन की ख़ुशबू।

सोमा देखने में सुंदर थी...उसका गला भी उतना ही मधुर था। कोयल कंठी थी वह। गाँव की महिलाओं की चहेती थी सोमा। धान की रोपाई के समय जब वह पंचम स्वर मे लामण और बाम्हणू जैसे लोकगीतों की लेर लगाती उसके स्वरों की प्रतिध्वनि देर तक घाटियों में गूँजती रहती। और गाँव की महिलाओं में उसके सुर से

सुर मिलाने की जैसे होड़ सी लगी रहती।

धान की रोपाई किसान और उसके बैलों की कड़ी परीक्षा लेती है। जब कीचड़ से भरे खेत में हाली पूरी ताक़त से म्याच्र पर टाँग रखकर मिट्टी और घास को घेंटता है...तब बैलों की शक्ति का पता चलता है। खेत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दलदल को इधर से उधर ले जाते हुए बैलों और हाली की अंतड़ियाँ ऐंठने लगती हैं। गाँव में कहावत है कि—करसाण ख़ुद कमज़ोर हो, पर उसके बैल और जनानी तगड़े होने चाहिए...इससे खेती करसाणी का काम आसानी से निपट जाता है। खेत की मिट्टी जितनी मुलायम होगी, धान की बूटी लगाने में उतनी ही आसानी। कीचड़ व दलदल भरे खेतों की रोपाई का मोर्चा महिलाएँ सँभाल लेती हैं। उनका यह काम भी कम जीवट का नहीं है...घुटनों तक दलदल में कतारबद्ध होकर खड़ी महिलाएँ ...एक खास लय ताल से अपने काम को अंजाम देती हैं। दोपहर की धूप में बिना आराम किए ...हँसते-गाते और बतियाते हुए एक के बाद एक खेत की रोपाई होती है।

सूरज की प्रचंड गर्मी जैसे उनके बदन को निचोड़ने लगती है...माथे का पसीना एड़ियों तक पहुँच जाता है। कपड़े जिस्म से चिपकने लगते हैं। कभी-कभार हवा के झोंकों से ठंडक का अहसास भी होता, मगर आषाढ़ की तपती तौंद में धान की रोपाई में जुटी औरतों की कोमलता को जैसे सोंखने लगती है। उनके चेहरे, गले और पीठ की चमड़ी सूरज की तेज़ गर्मी से झुलसने लगती है...मानो सूरज देवता भी उनका इम्तीहान लेने लगा हो। कभी नीले आसमान में उड़ती चीलों के साये को देख बादल के टुकड़े का भ्रम होने लगता। कभी कभार आसमान में छाई बदली खेत में पसीने से तर बतर महिलाओं पर तरस खाकर अपने नेह की बारिश कर ही डालती...

मगर धान की रोपाई का कार्य बिना रुके बिना थमे जारी रहता। खेतों की मालकिन को लगता कि अगर उसकी ज्वारी पर आई महिलाएँ कहीं थोड़ी देर के लिए भी पेड़ की छाँव में सुस्ताने बैठ गई तो काम की रफ़्तार मंद पड़ जाएगी। और एक आध खेत भी रोपाई के लिए रह गया तो...फिर उसे अकेले ही दिन भर काम करना होगा। सोमा भी कई दिनों तक धान की रोपाई में जुटी रहती...कभी अपने खेतों में तो कभी दूसरों के। कीचड़ में उसके पैरों में नुश्सू होने लगते। उंगलियों के बीच की जगह सफ़ेद पड़ जाती और ज़ोर की खारिश होने लगती...ऐसे में ज़ोर-ज़ोर से चीख़ें मारने को जी करता...ऐसी हालत हर उस औरत की होती जो कई दिनों तक धान की रोपाई में सुबह से शाम तक ज़ुटी रहती है।

सोमा ने नानी-दादी के नुस्खों को आजमाना सीख लिया था...पैरों के नुश्सुओं

पर वह कड़वा तेल और हल्दी का लेप लगाती। उंगलियों में जमा हो गए गंदे ख़ून को धागा लपेट कर सुई या खरने के काँटे से चोभे मार कर बाहर निकाल देती...इससे उसे राहत मिलती। और दूसरे दिन फिर वही धान का खेत और आसमान में तपता हुआ सूरज...धान की रोपाई करने वाली औरतों की हिम्मत की परीक्षा लेता। बुजुर्ग ठीक ही कहते हैं कि लहू और माटी गूँथ कर ही ख़ुशबूदार धान की फसल तैयार होती है। जाटू, चैना, टब्बरपाल, सुंगलचैना, झिंझण आदि कई क़िस्म के धान की फसल जब खेतों में तैयार होने लगती है उसकी ख़ुशबू पास से गुज़रने वालों को मदहोश सी कर देती है। ...चावल का सफ़ेद दाना वास्तव में किसान की मेहनत के मंथन से निकला मोती होता है...तभी तो उसे फूल से भी पवित्र मान कर देवता के शीष पर शोभित किया जाता है। कोई भी पूजा फूल और अच्छत के बिना अधूरी है।

और अपने खेत के चावल का भात...उसके तो क्या कहने। पतीली से माँड़ निकाल कर इसे ही तड़का लगा दो तो सब्जी की ज़रूरत नहीं। सर्दियों के दिनों में सरसों के साग के साथ देसी घी या नौणी का तड़का लगा दें तो इससे बड़ी नियामत और क्या चाहिए। गाँव की महिलाएँ अधपक्के धान को कड़ाही में डाल कर सेंकती हैं और उखल में कूट कर निकाले चावलों में थोड़ी सी खांड मिलाकर तयाप बनाती हैं। तयाप के स्वाद के भी क्या कहने...इसमें गरी-छुआरे मिला दो तो मज़ा ही और है। खेत-खलिहान में काम करते हुए मुट्ठी भर तयाप खिस्से में डाले रखो तो भूख लगने पर काम आते हैं।

सोमा अब जवान हो गई थी...उसका फूल सा खिलता हुआ सौंदर्य गाँव के लड़कों को आकर्षित करने लगा था। मगर इस बात को वे एक दूसरे पर जाहिर नहीं होने देते थे। आख़िर घर-गाँव की बात जो ठहरी। बुजुर्गों की मर्यादा अभी खंडित नहीं हुई थी...शादी ब्याह की बात बड़े बुजुर्ग ही तय करते। उसमें भी ग्रहगोचर और कुंडली का मिलान किया जाता... ख़ानदान और गोत्र की पड़ताल अलग होती...तब कहीं जा कर शादी के बंधन में बंधते। हाँ यह अलग बात थी कि लड़के अपनी पसंद सीधे माँ-बाप से न करके बहनों और भाभियों के कानों में डाल देते...और वे भी धान की रोपाई या घास की कटाई के मौक़े पर बात ही बात में रबारी दे डालती। दूसरे पक्ष की ओर से सहमति मिल जाती तो बात आगे बढ़ती वरना वहीं खतम!

बरसात के मौसम में दोघरी में बंधे बैलों की सेवा-टहल का जिम्मा सोमा का था। घर से दूर जंगल के साथ लगती नौ तोड़ ज़मीन पर थी दोघरी। इससे हटकर दूसरी ओर नाला और धान के रोपे थे। बैलों के लिए मक्की के खेतों के किनारे पर

टपरा बना रखा था। सोमा सुबह-शाम वहाँ से होकर ही जाती। बैलों के लिए घास निकाल कर वह सुबह ही रख देती थी...दिन भर धान के रोपे में ज्वारी देने के बाद वह वापस भी उसी रास्ते से घर लौटती। ...उस दिन भी वह धान की रोपाई करके दोघरी में आई थी। अभी घाटी में अंधेरा उतरा नहीं था...इससे पहले ही उसे बैलों को घास डाल कर वापस घर लौटना था...काम करते हुए वह अपनी ही धुन में गीत गुनगुनाती जा रही थी।

अभी वह दोघरी का दरवाज़ा बंद करके पलट ही रही थी कि किसी ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रखा...इस तरह अचानक कंधे पर हाथ का दबाव महसूस करने पर मारे डर के उसके गले से चीख़ निकल पड़ी—उई माँ...कौ...न। शब्द उसके मुँह में ही अटक कर रह गया...उसने पलट कर देखा तो हैरान रह गई। उसके सामने ऐ ख़ूबसूरत नौजवान खड़ा था...बिज्जू। विजय नाम था उसका...मगर सब उसे बिज्जू कह कर ही बुलाते थे। वह सोमा के साथ के ही गाँव का था....फ़ौज में भर्ती होने के बाद पहली बार गाँव लौटा था। सोमा ने भय मिश्रित आश्चर्य से कहा—मैं तो डर ही गई थी...तुम कब आए फ़ौज से? कैसे हो? सोमा ने सवाल दाग दिए।

—पिछले हफ्ते ही आया हूँ। बिज्जू उसकी ओर देखने लगा। मानो वह जुबान से कम आँखों ही आँखों में सोमा से संवाद करना चाहता हो। उसकी नजरें बारिश से भीगी सोमा के बदन को ग़ौर से निहार रही थी...उसकी जवान देह इन भीगे कपड़ों में किसी चित्रकार की कल्पना को साकार करती प्रतीत हो रही थी। बिज्जू की नजरें झाँकने लगी थीं। इससे पहले की वह कुछ कहता सोमा बोल पड़ी—अच्छा मैं चलती हूँ...बारिश से सारे कपड़े भीग गए हैं...जल्दी घर नहीं पहुँची तो डाँट पड़ेगी...तुम फिर मिलना। इतना कह वह मक्की के खेतों के बीच बने रास्ते से चंचल हिरणी सी कुलांचे भरती हुई...घर की ओर दौड़ पड़ी...बिज्जू देर तक सम्मोहित सा उसे जाते देखता रहा।

इस छोटी सी मुलाक़ात ने दोनों की आँखों में बड़े और सुनहरे सपने दे दिए थे। ऐसे सपने जो इससे पहले उन दोनों ने ही नहीं देखे थे। बिज्जू ने सोमा को अपनी अर्द्धांगनी बनाने का मन बना लिया था...तो दूसरी ओर सोमा के मन में भी प्रेम के अंकुर प्रस्फूटित हो चुके थे। मगर वह मर्यादा, लोकलाज और पारिवारिक डर की परतों के नीचे कशमशा रहे थे। सपनों के मायावी आकाश में पंख फैलाकर दूर-दूर तक उड़ने की उसकी भी इच्छा थी...मगर लड़की होने का अहसास उसके सपनों के पंख नोचनें लगा था। वैसे भी गाँव के लड़कों से हँस कर बात करना अब उसकी भाभियों को अखरने लगा था।

—जवान-ध्वान लड़की है...कोई ऊँच-नीच कर बैठी तो ख़ानदान की नाक कट जाएगी। समय रहते अब इसके भी हाथ पीले कर दो। भाभियाँ लगातार अपने घरवालों के कानों में यह मंत्र फूँकती रहती...नतीजा...सोमा के लिए अच्छे घर-वर की तलाश शुरू हो गई। सबका मानना था कि ख़ानदान अच्छा होना चाहिए ...ख़ानदानी लोगों में ही अच्छे संस्कार होते हैं।

यह भी संयोग ही था कि सोमा के लिए बिज्जू का रिश्ता आया था। सोमा की छोटी भाभी उसके दूर पार के रिश्ते की बहन थी। बात उसी के माध्यम से आगे बढ़ी थी..लड़का फ़ौज में है...बस और क्या चाहिए ...बेटी उसके घर में सुखी रहेगी। यह सोच कर माँ-बाप ने भी रिश्ते के लिए मंजूरी दे दी। और शादी भी चट मंगनी ...पट ब्याह की तर्ज पर हुई। देवी के मंदिर में लग्न हुए थे...दुल्हे वालों ने अपने घर में धाम दी थी। शादी के बाद सोमा कोई एक-डेढ़ माह ससुराल में रही थी...छुट्टियाँ ख़त्म होते ही विजय वापस लौट गया था...फ़ौज की नई-नई नौकरी थी...सोमा को भी वह अपने साथ नहीं ले जा सकता था। ट्रेनिंग ख़त्म होने के बाद पहली बार उसकी पलाटून को सीधे बार्डर पर भेजा जा रहा था। जहाँ अपना कोई ठिकाना नहीं होगा...सामने होगा दुश्मन जो गोलियों की बौच्छार से उसका और उसके साथियों का स्वागत करेगा...दोनों तरफ़ से बंदूक़ की नोक पर आदमी ही है...पर दोनों तरफ़ के मायने अलग...एक दूसरे को जाने बिना भी जान के दुश्मन...और एक दूसरे को मारने पर जेल नहीं वीरता पुरस्कार मिलेगा।

सोमा के लिए समय जैसे बड़ी तेज़ी से करवट ले रहा था। कितनी तेज़ी से हो गया यह सब। पहले जहाँ उसे अकेले रहना अच्छा लगता था...अपने ही में मस्त रहती थी वह...अब यही अकेलापन उसे साँप की तरह डसने लगा था। बरसात के मौसम में धार पर उठती धुंध उसे और भी डरावनी लगती...उसे लगता कि इस धुंध की ओट में उसका बिज्जू कहीं खो गया है...जो शायद इसके हटते ही प्रकट हो जाएगा। मगर यह सब उसका भ्रम होता जिसके टूटते ही उसकी आँखों से आँसू टपकने लगते। दो महीने में ही उसकी ज़िंदगी बदल गई थी...सोमा की उदासी देख सास ने उसे मायके भेज दिया था—माँ-बाप और भाई-भाभियों के साथ रहेगी तो पति की याद नहीं आएगी। अपनों के बीच मन बहल जाएगा। मायके में भी सोमा की उदासी दूर नहीं हुई। दिन तो किसी तरह काम करते हुए गुज़र जाता...मगर रात का अंधकार उसे डसने को आता। विजय के साथ बिताए दिनों की स्मृतियाँ उसका पीछा करती रहती। उसकी कही बातें कानों में गूँजने लगतीं और अचानक वह नींद से जाग उठती। पति से जुदाई का यह दर्द आँखों से आँसू बनकर उमड़ पड़ता।

सोमा विजय के वापस लौट आने के इंतज़ार में दिन काट रही थी। मगर

विधाता ने उसकी तकदीर में कुछ और ही लिख डाला था...और एक दिन उसके ससुराल में संदेश आया कि सीमा पर देश की रक्षा करते हुए विजय शहीद हो गया। उसके पार्थिव शरीर को तिरंगे में लपेटकर फ़ौज की गाड़ी में गाँव लाया गया। राजकीय सम्मान से उसका अंतिम संस्कार किया गया था। सोमा पर तो जैसे आसमान टूट पड़ा था। इतनी लंबी ज़िंदगी अब वह किसके सहारे काटेगी। अभी तो उसकी उम्र ही क्या थी...उसकी उम्र की लड़कियों की तो अभी शादी तक नहीं हुई थी। और वह...अपने माथे पर रंडेपे का कलंक लगा बैठी थी। इसमें उसका भी क्या दोष था? ...पर सास तो उसे ही इसके लिए जिम्मेदार ठहरा रही थी। उसे वह ख़ूब जली-कटी सुनाती रहती।

—मेरे कलेजे के टुकड़े को खा गई डायन...न जाने कैसी घड़ी थी...जब इस मनहूस के पैर मेरी दहलीज पर पड़े थे। सास का व्यवहार अब बदल गया था...आए दिन सोमा को कोसते हुए अपने बेटे के लिए विलाप करती। मानो उसे सीमा पर दुश्मन ने नहीं बल्कि सोमा ने गोली मार कर शहीद किया हो। फ़ौज की ओर से मिले पैसे भी उसने हथिया लिए थे...कागजों में अभी तक सोमा का नाम दर्ज नहीं था...विजय की नामिनी उसकी माँ ही थी...इसलिए जो भी वित्तीय मदद मिली ...वह माँ के नाम पर थी...फ़ौज के खाते में सोमा का नाम दर्ज ही नहीं था।

सोमा के आगे पहाड़ सी ज़िंदगी थी। जिसके पीछे वह सात फेरों के बंधन में बँधकर आई थी...वह ख़ुद ही ज़िंदगी के बंधन से मुक्त हो चुका था...अब इस घर में वह किसके सहारे रहेगी..? सास तो बात-बात पर ताने मारती थी...किसी से बात करना भी मुश्किल हो गया था। वह किसी से हँस कर बात नहीं कर सकती थी। उसे लगता कि औरत भले ही ममता की मूरत क्यों न हो, पर सास बनने पर वही अपने तेवर बदल देती है।

—खसमाखाणी...बेशर्म...कैसे खिड़खिड़ाकर हँसती है...लाज-शर्म तो भून कर खा गई है। मेरे बेटे को खा गई कलमुँही...डायन अब मेरी छाती पर मूँग दल रही है...हरामजादी। वक़्त के साथ-साथ सास की ज़्यादतियाँ कम होने के बजाय बढ़ती ही गई। जब पानी सिर के ऊपर से गुज़रने लगा तो...वह सब छोड़-छाड़ कर मायके वासप लौट आई। बूढ़े माँ-बाप इस उम्र में बेटी की दशा देख कर परेशान थे। समधन से एक बार बात कर सोमा को वापस भेजना चाहते थे। मगर उसकी व्यथा सुन कर भाई इस पक्ष में नहीं थे। बड़े भाई ने साफ़ कह दिया था—उस चुड़ैल के पास अब हमारी बहन नहीं जाएगी...जानबूझ कर इसे कुँए में नहीं धकेलेंगे। अब यह यहीं पर रहेगी। यह भी उसी माँ की जायी है जिसके पेट से हम पैदा हुए हैं। घर के अन्य सदस्यों ने भी एक स्वर में सहमति दे दी थी।

सोमा अब अपने मायके में रहने लगी थी। मगर दो ही महीने में उसकी दुनिया बदल गई। हालाँकि, खेत-खलिहान, नाल-धार और हाट-घराट वही थे... पर सोमा बदल गई थी। उसके चेहरे पर खिलने वाली मुस्कान जाने कहाँ ग़ायब हो गई थी। उस पर अभागिन होने का कलंक लग चुका था...सब उसे बेचारगी की नज़र से देखते और सारा दोष क़िस्मत के मत्थे मढ़ देते।

—इसकी तो तकदीर ही माड़ी है...इतना अच्छा घर-वर मिला था...पर क्या करें इसके भाग में पति का सुख ही नहीं लिखा था। गाँव की औरतें आपस में बतियाते सोमा से सहानुभूति जताती—ऐसा तो बाहरवें बैरी के साथ भी न हो...जोड़ी सलामत रहे तो ग़रीबी में भी दिन निकल जाते हैं, पर क्या करें तकदीर का लेखा है। पता नहीं पिछले जन्म के कोई पाप है जो इस जन्म में भुगतने पड़ रहे हैं।

सोमा अब भी लोगों के खेतों में धान की कटाई करने...सर्दियों के लिए घास काटने और खेतों में गोबर की खाद डालने की ज्वारी पर जाती थी। मगर अब उसमें वह पहले जैसी उमंग नहीं थी...उसके गले से अब लोकगीतों के स्वर नहीं निकलते थे...गाँव की महिलाएँ आपस में हँसी-ठठा भी करती...पर वह एकदम पत्थर की मूर्ति बनी रहती...चुपचाप अपने काम में लगी रहती। उसके लिए तो जैसे सब कुछ बदल गया था...पहाड़ के बदलते मौसम की तरह पतझड़ उसकी ज़िंदगी का हिस्सा बन गया था...जिसमें खुशियों के फूल-पत्ते हवा के झोंके के साथ बिखर गए थे। और वह सूखी ठूँठ बन कर रह गई थी। जिस पर बहार का भी कोई असर नहीं था।

घर-गाँव में भी अब सोमा के भविष्य को लेकर बातें होने लगी थी—अभी बालक उम्र है बेचारी की कब तक मायके में बैठी रहेगी? अभी तो माँ-बाप ज़िंदा हैं। इसके बाद यह सहारा भी ख़त्म हो जाता है। सोमा की ज़िंदगी ने फिर करवट बदली। एक बार फिर उसका घर बसाने का प्रयास किया गया। पड़ोस की पंचायत के धारगलू गाँव में उसकी शादी कर दी गई। उसकी दूसरी शादी थी...इसलिए लड़के वालों की भी ज़्यादा पूछताछ नहीं की गई...जैसा क़िस्मत को मंजूर होगा...लड़की जात है किसी न किसी का तो सहारा चाहिए ही...और फिर पति से बढ़ कर सहारा और कौन हो सकता है? लड़के की भी दूसरी शादी थी...कहा गया था कि पहली पत्नी मर गई थी...उसके एक बेटा था। ...पर बाद में पता चला कि उसकी सौतन मरी नहीं बल्कि उसके पति सोहन लाल को छोड़ कर भाग गई थी। उसके घर से भागने का कारण सास का कड़क स्वभाव और सोहन लाल का शराब के नशे में उससे मारपीट करना था।

सोहन लाल किन्नौर में डेलिवेज आधार पर पीडब्ल्यूडी में ड्राईवर था। शराब

के अलावा खैनी और भाँग जैसे नशे करने में भी वह पारंगत था। ऊपर से जुआ खेलने की लत भी लग गई थी। नशे और जुए की लत ने उसे शारिरीक व मानसिक रूप से तो खोखला कर ही दिया था। आर्थिक रूप से भी वह कंगाल ही था। उससे एक पैसे की उम्मीद सोमा को नहीं थी...घर में ज़मीन काफ़ी थी गुजारे के लिए अनाज हो जाता था...पर उसके लिए तो खेतों में पसीना बहाना पड़ता था। सोमा की दूसरी सास ने शादी के बाद अपने दोनों बेटों में ज़मीन बाँट कर अलग कर दिया था। स्वयं वह बड़े बेटे के साथ रहने लगी थी। जो शिक्षा विभाग में चपरासी था।

घर के हालात देख कर अब सोमा ने भी मन कड़ा कर लिया था। उसकी मेहनत का नतीजा था कि उनके खेतों में फसल अच्छी होने लगी थी...और घर का गुज़ारा चलने लगा था...पैसे-धेले के लिए उसने गाय पाल रखी। उसका दूध बेच कर वह कपड़ा-लता, नून तेल का ख़र्च निकाल लेती। वह पढ़ी-लिखी तो थी ही। डाकख़ाने की एजेंट बन कर वह गाँव वालों के खाते खुलवा कर उनमें बचत की आदत डाल रही थी। जबकि महिलाओं के स्वयं सहायता समूह बनाकर उनको भी आर्थिक गतिविधियों से जोड़ कर कई तरह के घरेलु उत्पाद मेलों और प्रदर्शनियों के माध्यम से बेचती थी। वह गाँव की महिलाओं की अगुवा ही नहीं बल्कि उनके लिए आदर्श बन चुकी थी। नशा निवारण हो अथवा स्वच्छता अभियान, सोमा और उसके महिला मंडल की सहयोगी बढ़-चढ़ कर भाग लेती।

मगर उसके पति सोहन लाल की नशे की लत लाख कोशिश के बावजूद नहीं छूटी। एक दिन नशे की हालत में गाड़ी चलाते हुए वह दुर्घटना कर बैठा। गाड़ी पहाड़ी से टकराकरने की वजह से टूट-फूट गई थी...वह बुरी तरह से ज़ख़्मी हो गया था...कुछ दिन अस्पताल में भर्ती रहा। मगर वह ठीक नहीं हुआ ...ज़ख़्म भरने का नाम नहीं ले रहे थे। नशा करने की वजह से फेफड़ों की बीमारी हो गई थी। डाक्टरों ने भी जवाब दे दिया था...सोमा के लिए उसका इलाज करवाना भारी पड़ रहा था। जो थोड़े बहुत गहने थे वो भी बिक गए थे...जब कुछ भी चारा नहीं रहा तो वह उसे घर ले आई थी। कुछ दिन बाद वह चल बसा।

सोमा की क़िस्मत में जैसे सुहाग का सुख लिखा ही नहीं था। चार-पाँच साल में वह दो बेटियों की माँ बन गई थी...एक बेटा सोहन लाल की पहली बीवी से था...अकेली जान पर तीन जनों के पालन-पोषण का बोझ पड़ गया था।

सास और जेठ उसकी मदद करने के बजाय उल्टा उसे ही दोष देते थे। सास कहती—इस कुलच्छणी की वजह से ही मेरा सोहणू नहीं रहा। ...मगर अब वह भी चुपचाप सुनने के बजाय पलट कर जवाब देती—मेरी वजह से क्या हुआ...आपका ही बेटा नशेड़ी था...ख़ुद से तो सुधारा नहीं गया, पराई जाई को दोष दे रहे हैं। मुझसे

जो बन पड़ा मैंने किया...अपना गैहणा-गट्ठा बेच कर भी उसका इलाज करवाया। मगर जब भात से पीच्छ हो गई थी...तो मैं क्या करती। सास बहू के बीच तकरार अब आम बात हो गई थी। कभी-कभी तो सास उसे मारने को दौड़ती...मगर वह भाग ज़ाती...और दूर से ही उसे खरी-खरी सुना देती। सोमा को लगता कि अब सास उम्र भर उसकी छाती पर मूँग दलती रहेगी।

—मैं ऐसे ही मार खाने के लिए नहीं आई हूँ यहाँ। वह धमकी भरे अंदाज़ में कहती—अगर दूसरी बार ऐसा किया तो थाने में रिपोर्ट लिखवा दूँगी। सोमा की इस धमकी का असर सास पर हुआ था...वह गालियाँ तो देती पर उस पर हाथ उठाने से डरती थी। क्या पता वह सच्चमुच ही थाने में चली जाएगी...तो लेने के देने पड़ जाएँगे। सोमा की दानों बेटियाँ स्कूल में पढ़ती थीं...जबकि उसकी सौतन का बेटा रहता तो उसके साथ था। मगर सुनता दादी की ही था। दादी ने उसे समझा रखा था कि वह घर के किसी काम को हाथ न लगाए...सोमा की कोई बात न सुने। सोमा जानती थी कि लड़के को दादी की शह है। इसलिए वह उसे कुछ नहीं कहती थी।

सोमा अभी 30 साल की भी नहीं हुई थी। हँसमुख स्वभाव और मेहनती होने की वजह से उसके चेहरे का नूर कायम था। उसके इस रूप यौवन पर जेठ की नज़र थी। मगर वह सोमा को फूटी आँख नहीं सुहाता था...उसकी नियत पर उसे शक था...इसलिए वह उसके सामने नहीं पड़ती थी। उस दिन वह घर से दूर दोघरी में मक्की के खेत में घास काट रही थी...अचानक उसके जेठ ने पीछे से आकर उसे पकड़ लिया। इस अप्रत्याशी हमले से वह बौखला गई थी। जेठ को धोबी पछाड़ देते हुए उसने दूसरे खेत में पटक दिया था...और दराती लहराकर वह शेरनी की तरह दहाड़ी थी—खबरदार जेठ जी अगर दूसरी बार ऐसी गलती की तो दराती से काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दूँगी। जेठ ने उसे समझाने की कोशीश करते हुए कहा—देख सोमा मैं जानता हूँ तू अकेली औरत है...तू बस एक बार मेरी बन जा तुझे मैं सहारा दूँगा...तेरे बाल बच्चों का मैं ख़याल रखूँगा...और फिर घर की बात घर में ही रह जाएगी। मगर इससे आगे वह कुछ और कहता सोमा ने गालियाँ बकते हुए उसे वहाँ से भगा दिया था। उस दिन के बाद से उसकी जेठ के साथ बातचीत बंद हो गई थी। उसने यह बात अपनी जेठानी को भी बताई थी। मगर वह बेचारी बेबस थी...उसे भी वह बात-बात पर मारता-पीटता और प्रताड़ित करता था। शराब के नशे में उसे कमरे से बाहर निकाल देता था। बेचारी को रात बरामदे में ही काटनी पड़ती थी। इस बात को वह किसी से भी नहीं कहती थी। मायके में भी उसका कोई नहीं था। इसलिए वह सास और पति के जुल्म चुपचाप सह रही थी।

सास ने भी सोमा को समझाने की कोशिश की थी—बहू तू नरेंद्र की बात मान

जा...उसका घर बसा ले...मेरे लिए तो दोनों ही बेटे एक जैसे थे...अब अगर सोहणू नहीं है तो तू नरेंद्र के घर बैठ जा...घर की ही तो बात है...ऐसा रिवाज भी है। मगर सोमा उसकी इस बात पर भड़क उठी थी—आग लगे ऐसे रिवाज को...औरत के जिस्म को आप लोगों ने क्या बिछौना समझ रखा है...जब मर्जी आई जिस किसी के बिस्तर पर बिछा दिया? आपके बेटे के आगे बिछने से बेहतर है मैं किसी और से ही शादी कर लूँ। वह कम से कम मेरा अपना तो होगा...और फिर आपके बेटे को औरत नहीं रखैल चाहिए।

—तुझे रखैल बनने को कौन कहता है। सास ने कहा—शादी करवाऊँगी तेरी उसके साथ...बस उसे एक बेटा दे दे तू...वंश चल पड़ेगा बेचारे का...और फिर सोहणू के साथ भी तो तेरी दूसरी शादी थी...यहाँ तो औरतें सात-सात घर बसती है।

—दूसरी शादी मेरी मर्जी नहीं, मजबूरी थी। सोमा ने कहा—वंश चलाना है तो बीवी के साथ चलाए...दीदी की बेटियाँ हो रही है तो इसमें उसका क्या दोष है? यह औरत के हाथ नहीं होता है...औरत तो धरती माँ के समान है इसमें जैसा बीज बोओगे वैसी ही तो फसल होगी। सास के मनाने का सोमा पर कोई असर नहीं हुआ।

सोमा बाहर से तो हिम्मत दिखाती थी ...मगर अब वह अंदर ही अंदर डरी-डरी सी रहने लगी थी। वह जानती थी कि जंगली जानवरों से तो मुकाबला किया जा सकता है...मगर आदमी के भीतर का जानवर ज़्यादा खतरनाक और हिंसक होता है। जंगली जानवर तो पेट की आग बुझाने के लिए हिंसक बनते हैं...मगर आदमी की हवस कभी ख़त्म नहीं होती...वह तो बार-बार औरत के जिस्म को नोंचता है...। और...फिर ऐसा हिंसक और आदमखोर घर में ही मौजूद हो तो वह कब तक अपने आपको बचा पाएगी? कभी न कभी उसका जेठ अपने अपमान का बदला उससे लेकर रहेगा।

वह दिन के समय घर से बाहर रहती...मगर शाम होते ही अपने घर का दरवाज़ा बंद कर देती थी। वह कहा करती थी..कि—मेरे घर का दरवाज़ा तो कमज़ोर है...मगर मेरा इरादा कमज़ोर नहीं है...सास और जेठ के मंसूबे कभी मेरे इरादे को तोड़ नहीं पाएँगे। उसे लगता कि उसके घर का दरवाज़ा...किसी मजबूत क़िले का फाटक है...जिसके पीछे वह ख़ुद को सुरक्षित महसूस करती थी...उसे लगता कि जब तक उसके घर का दरवाज़ा मौजूद है वह भी महफूज है...मगर जिस दिन वह टूट गया तो उसकी अस्मिता भी तार-तार हो जाएगी।

उस दिन वह देर से घर लौटी थी। शाम का धुंधलका अपने पैर पसार चुका था। घर के पिछवाड़े एक आकृति सी दुबकी हुई थी। पहले उसने सोचा कुत्ता पिछवाड़े में दुबका पड़ा होगा...मगर उसकी आहट पाते ही कुत्ता या तो भौंकने

लगता...या फिर दुम हिलाता हुआ उसकी टाँगों से लिपटने लगता। पास जा कर देखा तो उसकी जेठानी थी...सोमा को देखते ही वह सिसकने लग गई। सोमा के पूछने पर उसने बताया कि उसके पति ने आज फिर उसे कमरे से बाहर निकाल दिया है...ऐसा वह पिछले तीन-चार दिन से लगातार कर रहा है। सोमा ने जेठानी की बाँह पकड़ उसे उठाते हुए कहा—बोबो चल उठ...अंदर चल...ये घर तेरा भी है। ब्याह कर आई है तू...इस तरह जब मर्जी हो घर से बाहर कर दिया...इनके बाप का राज है क्या...कोर्ट कचहरी के चक्कर लगाने पड़ेंगे तब लगेगा पता।

सोमा उसे आँगन तक ले आई...बरामदे में बैठे जेठ व सास ने उसकी आवाज़ सुन ली थी। जेठ ने अपनी पत्नी को तो अंदर जाने दिया। मगर सोमा को गालियाँ देने लगा—तू कौन होती है दूसरों के घर के मामले में टाँग अड़ाने वाली। बड़े पंख निकल आए हैं तेरे। तुझे मैं आज किसी को मुँह दिखाने लायक़ नहीं छोड़ूँगा। इतना कह वह सोमा की ओर झपटा। सोमा ने झटपट अपने कमरे का दरवाज़ा खोला और अंदर से चिटकनी लगा दी। मगर वह बाहर से ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा पीटने लगा...शराब के नशे में उसके अंदर का जानवर हिंसक हो उठा था...वह अपनी सारी कुंठाओं और अपमानों का बदला चुकाना चाहता था। वह लगातार सोमा के कमरे का दरवाज़ा पीटता जा रहा था।

पहले तो सोमा डर गई...मगर फिर हिम्मत जुटाकर एक हाथ में डंडा थाम लिया और दूसरे से दरवाज़े की चिटकनी खोल दी। उसके जेठ ने जैसे ही दरवाज़े को ज़ोर का धक्का मारा वह भी कपाट खुलते ही सामने की दीवार से जा टकराया। इससे पहले कि वह संभलता सोमा ने हाथ में लिए डंडे से उस पर प्रहार करना शुरू कर दिया...कुछ देर पहले जो शेर बनकर दहाड़ रहा था। अब सोमा के रौद्र रूप देख वह जैसे-तैसे गिरते पड़ते कमरे से बाहर निकला। सोमा के डंडे के प्रहार से उसके सिर, बाजू और पीठ पर अनेक चोटें आई थीं।

सुबह सोमा दरवाज़े से बाहर निकली तो बरामदे में उसकी जेठानी अपने पति के घावों की बहणे की झाड़ी से सिकाई कर रही थी। दर्द के मारे उसका जेठ कराह रहा था...ओ मेरिये मावे बड़ी पीड़ लगी। सोमा ने जेठानी से मुखातिब होकर जेठ को सुनाने की गरज से कहा—मैंने पहले ही कहा था...मेरे घर का दरवाज़ा कमज़ोर ही सही पर...इसके कपाट मेरी मर्जी के बिना नहीं खुलते हैं। यह बात मैंने आप सबको समझा दी थी...आईंदा भी मेरी यह बात याद रखना। सोमा ने दरवाज़ा बंद किया और दराती लेकर खेतों की ओर चली गई।

अस्किनी, 2009

सेब तोड़ने वाली लड़की

वह एक सरल और सहज स्वभाव वाली हँसमुख लड़की थी। साँवली-सलोनी सी उस लड़की के व्यक्तित्व में अनूठे जुझारूपन का समावेश था। जो उसे आम लड़कियों से अलग पहचान दिलाता...भीड़ से अलग। मैं जब भी उसे देखता तो लोकगीत छिंज की नायिका की तरह उसका रूप यौवन कौंधने लगता। सहज भाव से उस लोकगीत की पंक्तियाँ ज़ेहन में गूँजने लगती—पारिए जांदेआ राजपुता...दो जणी दा मुल्ल करी जा...गोरी दा मुल्ल लाख टका—सांवली दा हुँदा लख चार। उसका मिलनसार स्वभाव और भोलापन ही था...जिससे मैं बरबस उसकी ओर आकर्षित हुआ था। वहीं उसे लेकर सौंदर्य की अलग परिभाषा गढ़ने को जी चाहता। रेवती नाम था उसका। जबकि घर में उसे रेबू के नाम से बुलाया जाता था। पहली ही मुलाक़ात में वह बातचीत में ऐसी लगी मानो वर्षों की पहचान हो। कुल मिलाकर उसमें एक अच्छे दोस्त की वे सब खूबियाँ थीं...जो आज के जमाने में ढूँढ़े से भी नहीं मिलती हैं।

मेरे साथ उसकी जान पहचान कब दोस्ती में बदली और यही दोस्ती कब अपनेपन में बदली पता ही नहीं चला। वह जब भी मिली चेहरे की मोहक मुस्कान लिए ज़िंदादिल्ली से मिली। अपने भीतर के संघर्षों, द्वद्वों और उलझनों की छाया कभी भी उसने अपने पर हावी नहीं होने दी। मेरी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाते हुए उसने कहा था—आपसे ऐसी दोस्ती की उम्मीद करती हूँ ...जिस पर हम दोनों को नाज हो। फिर वह ठहाका लगाकर हँसी थी—दोस्ती भी ऐसी हो कि कोई तुम्हें मुझसे बतौर दोस्त उधार माँगे।

—और तुम मुझे दूसरों के हवाले कर दोगी। मैं उसे छेड़ने के अंदाज़ से कहता हूँ। मगर वह—गंभीर स्वर में बोलती है—मैं तो बस मिसाल दे रही हूँ...बुद्धू कहीं के। दोस्त कभी बाँटे नहीं जाते ...सहेज कर रखे जाते हैं...मैं भी अपनी दोस्ती को सहेज कर रखूँगी...ज़िंदगी भर के लिए...समझे।

वह अपने घर से दूर इस शहर में अकेली रहती थी। सरकारी कार्यालय में नौकरी करने के अलावा वह गायकी के हुनर को भी ज़िंदा रखे हुए थी। उसके गाने आकाशवाणी व दूरदर्शन के माध्यम से गूँजते रहते! वहीं पर उसके गानों की आडियो व वीडियो एलबम भी बनी थी...स्टेज शो भी वह किया करती थी...पहाड़ों की चोटियों को अपने क़दमों से रौंदना उसके शौक़ में शुमार था...वहीं पर उसे कविता लिखने का भी शौक़ था...इसके बावजूद वह अकेली थी।

मैंने एक दिन उसे अहमद फराज का शेयर एसएमएस किया था—

सुना है बोले तो बातों से फूल झड़ते हैं...
ये बात है तो चलो बात करके देखते हैं ...
सुना है उसके लबों से गुलाब जलते हैं ...
सो हम बहार पर इलजाम धर कर देखते हैं।

जवाब में उसने बस इतना ही कहा था—बहुत ख़ूब। शेर अच्छा है, मैंने नोट कर लिया है। वैसे इतना बढ़िया और रोमांटिक शेर तुम्हारा हो नहीं सकता। चंद ही मुलाक़ातों में उसने अपनी ज़िंदगी की किताब के पन्नों को मेरे सामने खोल कर रख दिया था। और मैं उन पन्नों को पलट कर उसे पढ़ने की कोशिश करने लगा था। उसकी ज़िंदगी किसी दिलचस्प क़िस्से से कम नहीं थी। बातों ही बातों में उसने कहा था—मैं आपकी कहानियों की फैन हूँ। मुझे लगता है आपकी कहानियों के पात्र भी मेरी ज़िंदगी के क़रीब से जुड़े हुए हैं। वही ग्रामीण परिवेश जो आपकी कहानियों में उबर कर आता है। उसी तरह के परिवेश में तो मैं भी पली-बढ़ी हूँ।

वह मेरी पाठक थी। जानकर अच्छा लगा। मगर अब तो वह जैसे मेरी कहानी की पात्र बनने जा रही थी। एक दिन उसने कहा—क्या तुम मेरी ज़िंदगी के बारे भी लिखना चाहोगे?

—हाँ क्यों नहीं। मैंने कहा—अगर कहानी और उसके पात्र स्वयं आकर कहे कि हमें अपनी रचना में ढालो...तो कल्पना के संसार में भटकने की क्या ज़रूरत है। रचना और उसके पात्र दोनों ही सजीव हो उठेंगे। मैंने उत्साहित होकर कहा था।

—आज मैं जिस भी मुकाम पर हूँ...उसे मैंने अपनी शर्तों और ज़िद के बल पर हासिल किया है। मुझे समाज से ही नहीं बल्कि अपने आपे से भी दुस्साहस भरी ज़िद करने की आदत है। एक पिछड़े ग्रामीण क्षेत्र की लड़की के लिए क्या यह सब इतना आसान है? कई तरह की वर्जनाओं को तोड़ना...परंपरओं और समाज से खुली बग़ावत है। वह अपनी धुन में कहे जा रही थी।

—बचपन से ही उजड्डता मेरे स्वभाव में शामिल थी...काम से कभी न थकने वाली। ज़िद की पक्की थी मैं जो मन में ठान लिया उसे पूरा करके ही छोड़ती

नतीजा चाहे जो भी हो। स्कूल में लड़कों के बीच खेलना-कूदना...लड़ना-झगड़ना तो लगा रहता था। अध्यापकों की चहेती इसलिए थी कि रेबू हर काम को आगे रहती थी। उन दिनों प्राईमरी स्कूल के लिए भी तीन किलोमीटर दूर पैदल जाना पड़ता...पहाड़ की टेकरी से होते हुए नीचे की ओर जाती संकरी पगडंडी पर कभी अकेले तो कभी और बच्चों के साथ आना जाना होता। रास्ते में कई बार जंगल में मौसमी वन फलों काफल...खरनू...जामुन...फेगड़े...आंवले आदि के पेड़ों पर चढ़कर फल तोड़ लाने में भी पीछे नहीं रहती। डर नाम की चीज़ तो बचपन से ही नहीं थी। स्कूल से आते-जाते कई बार ढाँक के उस पार भालू को गुज़रते हुए देखा है...वहीं पर कई बार बड़ी सी चट्टान पर तेंदुए को गुनगुनी धूप में आराम फरमाते देखते थे। वह जैसे स्मृतियों के झरोखे से होकर अतीत की पगडंडियों पर सरपट भागने का प्रयास कर रही थी। जंगल, पहाड़, खेत खलिहान और पहाड़ के वो जन...जिनके बीच उसका बचपन बीता था। सब उसकी स्मृतियों का हिस्सा थे।

—पाँचवीं पास करने के बाद बापू ने मेरी आगे की पढ़ाई न करवाने का मन बना लिया था। मुझे तो उस समय पता चला जब चाचू मेरे छोटे भाई के लिए तो किताबें ले आया, पर मेरे लिए नहीं। मैंने जब पूछा कि मेरी किताबें कहाँ है ? इस बार जवाब बापू ने दिया था—क्या करोगी किताबों का अब तुझे आगे नहीं पढ़ना है...घर के काम काज देख और फिर तेरी शादी भी करवानी है...और पढ़ेगी तो बिगड़ जाएगी।

बापू का इतना कहना था कि मैं लगी ज़ोर-ज़ोर से रोने-चिल्लाने। सारा घर सिर पर उठा लिया...तंदूर के पास धान के पराल की मंजरी को जैसे मैंने तार-तार कर दिया...बापू के डराने धमकाने का मुझ पर कोई असर नहीं हुआ। दूसरे दिन मैं बिना किताबों के ही स्कूल चली गई। स्कूल में मैडम ने पूछा रेबू तेरा बस्ता कहाँ है तो मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी और रोते हुए ही सारी बात एक साँस में कह डाली। कुछ देर सोचने के बाद मैडम ने कहा—कोई बात नहीं किताबों का इंतजाम हो जाएगा। खैर... दूसरे बच्चों की फटी-पुरानी किताबें को माँग कर जैसे-तैसे किताबों का जुगाड़ किया गया। ...और मेरी पढ़ाई चल निकली। स्कूल के खर्चे के लिए बग़ीचे में मज़दूरी का काम कर लेती थी। बापू अपनी इस अनचाही औलाद से बेहद दुःखी थे।

उसने बताया था कि उसके गाँव के पास ही टाटा वालों का एक बग़ीचा था। बग़ीचा क्या पूरी एस्टेट थी वह...क़रीब दो-ढाई सौ बीघे की पहाड़ी में फैले इस सेब के बग़ीचे की अलग ही दुनिया थी। चारों तरफ़ से कंटीली झाड़ियों व लोहे की तारों से घिरे इस बग़ीचे के लिए लोहे के मेन गेट से होकर सड़क गुज़रती थी। इस

एस्टेट के मालिक चंडीगढ़ के रहने वाले थे। जो कभी-कभार ही यहाँ पर छुट्टियाँ बिताने आया करते थे। बग़ीचे का सारा प्रबंध सेना से रिटार्यड नेपाली सुबेदार सोमनाथ थापा के हाथों में था। आम दिनों में तो गाँव वाले इस बग़ीचे की ओर जाते भी नहीं थे। बग़ीचे का गेट हर समय बंद रहता था। लेकिन सेब के सीजन के दौरान इसका गेट गाँव वालों के लिए खुल जाता था। बग़ीचे के अंदर ही मालिकों की एक बड़ी सी हवेली थी...जिसे गाँव वाले कोठी कहते थे। इसी हवेली की वजह से इस जगह का नाम भी कोठी पड़ गया था। इसके अलावा सर्वेंट क्वार्टर, गोदाम और गोशाला आदि भी इसी बग़ीचे में थे। रेवती बताती है कि उसे इस हवेली का आकर्षण बचपन से ही बग़ीचे में खेंच लाता था। हमारे घरों के मुकाबले यह बहुत ही साफ़-सुथरी, आकर्षक और सुंदर थी। स्कूल की छुट्टियों में मैं भी गाँव की अन्य लड़कियों के साथ बग़ीचे में सेब तोड़ने के लिए गई थी। मैनेजर मेरे रिश्ते के जीजा का दोस्त था...वह कई बार देऊली और अन्य समारोहों के दौरान हमारे घर पर भी आता था। इसलिए छोटी होने के बावजूद उसने मुझे काम पर रख लिया।

बग़ीचे में सेब तोड़ने वाले, ढोने और मार्का लगाने वालों के अलावा पतरी बनाने, ग्रेडिंग करने वाले और पैकर अलग होते थे। जिन्हें आज की भाषा में स्किल्ड लेबर कहा जा सकता है। लेबर के फटे पुराने कपड़ों में मैं भी सबसे पहले बग़ीचे में पहुँचने का प्रयास करती। क्योंकि देरी से पहुँचने वालों को चाय नहीं मिलती थी। एक कप चाय के लिए मुझे घर से जल्दी निकलना पड़ता था। जल्दी-जल्दी घर के काम निपटा कर बग़ीचे की ओर दौड़ पड़ती थी। मेरे हाथ में दराती कमर में रस्सी और पिटठू रहता था। क्योंकि वापसी पर घर के लिए जंगल से घास काट कर ले जाती थी। मैनेजर मुझे नाम से पुकारने के बजाय साली कह कर बुलाता था। और काम के लिए ड्यूटी भी वही लगाता था। मुझे जो भी काम दिया जाता पूरी ईमानदारी और लग्न के साथ करती। सेब तोड़ने के लिए ऊँची से ऊँची टहनी पर मैं पहुँच जाती थी। आमतौर लड़कियों को सेब तोड़ने और ढोने का ही काम दिया जाता था। मगर मैं ग्रेडिंग और पतरी बनाने का काम भी करती जो केवल मर्दों का ही काम माना जाता था। मगर मैं अड़ जाती थी...यह मर्दों का काम है तो मैं क्यों नहीं कर सकती?

...सेब के ढुलान...पैंकिंग व ग्रेडिंग आदि के लिए नेपाली गोरखे होते थे। उनका रहन-सहन गाँव वालों की अपेक्षा साफ़-सुथरा होता था। गाँव की लड़कियों के साथ उनका आँख मटका और टशन चलती रहती थी। दिल की बात अँखियों से होती और सेब का सीजन ख़त्म होते-होते कभी कभार एक दो लड़कियाँ गोरखों के साथ भाग जाती थी। उस माहौल में ऐसा होना स्वभाविक ही था। गोरखे ही क्यों

स्थानीय लड़के और लड़कियाँ भी इस स्वच्छंद माहौल में एक दूसरे के साथ भाग कर शादी के बंधन में बंध जाते थे।

—कहा तो यह भी जाता था कि गाँव की एक विधवा के साथ मैनेजर के संबंध थे। उसे उसने बग़ीचे में गायों की देखभाल के लिए रखा हुआ था। वैसे वह फ़ौजी ईमानदार और सच्चा इन्सान था। इसलिए मुझे मैनेजर अच्छा लगता था। वह मेरे काम की कद्र करता था। इसलिए वह पेमेंट करती बार औरों के मुक़ाबले मुझे ज़्यादा पैसे दे देता था। सेब तोड़ने के अलावा वह मुझे कोठी के अंदर भी काम के बहाने भेज देता था। कोठी की साज-सज्जा देखकर मैं अभिभूत हो जाती। यह अलग ही दुनिया थी...इतने ख़ूबसूरत घर में रहने वाले इस बग़ीचे के मालिक ख़ुद कितने सुंदर होंगे...मन में यह जिज्ञासा पनपने लगती। आख़िर कैसे होंगे वो लोग...उनकी बातचीत...रहन-सहन, खान-पान...पहनावा आदि सब कैसा होगा। मैं अक्सर यही सोचती रहती। कैसे होंगे वे लोग...मैं उनसे बात कर पाऊँगी या नहीं। एक जिज्ञासा सी मेरे मन में रहती।

...टाटा वालों का बग़ीचा देख कर मेरे मन में यह ख़याल आता कि काश हमारा भी अपना बग़ीचा होता...तो मैं अपने ही बग़ीचे में सेब तोड़ कर पैक करके बाहर बेचने भेजती। इस बारे में जब बापू से बात की तो वह भड़क उठे।

—अनाज पैदा करने वाले खेतों में सेब लगाएँगे तो खाएँगे क्या। बापू ने नाराजगी प्रकट करते हुए कहा था—दूसरों की देखा-देखी में अपना घर नहीं फूँका जाता।

जिद्दी तो मैं बचपन से ही थी। एक बार सेब का बग़ीचा लगाने की मन में ठान ली...तो अपनी जिद्द पूरी करके ही छोड़ी। जिस ज़मीन पर अनाज नहीं बोया जाता था...वहाँ पर गड्ढे करने में जुट गई। कोई भी मेरी मदद के लिए आगे नहीं आया। दस-पंद्रह दिनों की लगातार मेहनत के बाद सौ डेढ़-सौ बूटे सेब के मैंने भी लगा दिए। बापू मुझसे नाराज था...माँ कुछ भी नहीं कहती थी और बापू के डर से भाइयों ने भी मेरा कोई साथ नहीं दिया। ग़नीमत ये थी कि मेरे लगाए हुए पौधों को किसी ने नुकसान नहीं पहुँचाया। मैं टाटा वालों के बग़ीचे में भी काम करती रहती और अपने लगाए पौधों की देखभाल भी बराबर करती रहती थी। यह सब खुली आँखों से सपने देखने के समान था...और मैं अपने इस छोटे से सपने को साकार होते देखना चाहती थी।

उस रोज़ वह मिली तो कुछ उदास थी। यह शायद पहला मौक़ा था...जब उसके चेहरे पर वह स्वभाविक मुस्कान नहीं थी। हमेशा चहकने वाले उस चेहरे पर मायूसी के बादल उमड़-घुमड़ रहे थे। कमरे का दरवाज़ा खोलते ही वह सोफे पर

जैसे धंस सी गई...कुछ देर की खामोशी...सन्नाटा कमरे के माहौल को और भी बोझिल बना रहा था।

—क्या बात है ? आज कुछ उदास लग रही हो सब ठीक तो है। उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए मैंने कहा।

—कुछ भी तो नहीं। बात को टालने के अंदाज़ में उसने कहा—मन कुछ उदास है...पिछले हफ्ते घर नहीं गई थी न ...इसलिए। मैंने उसे अपनी बाहों के घेरे में समेटते हुए कहा—तो बच्चे को घर की याद आ रही है। उसने बात का सूत्र जोड़ते हुए कहा—माँ का फ़ोन आया था...देर तक बात करती रही...रोयी भी थी...आख़िर माँ है न। कह रही थी कि ऊपर वाले कमरे की छत पर तेरे लिए एक संदूक रखा है...मैंने सबसे कह दिया है वो मैं तुझे ही दूँगी। उसकी आँखें नम हो गई थी...बात पूरी करने से पहले ही वह मेरी गोद में किसी मासूम बच्चे की तरह सुबकने लगी थी। उसकी पीठ को सहलाते हुए मैंने कहा था—अरे इतनी बहादुर लड़की रोने लगी ...यह अच्छी बात नहीं है...माँ का दिल रखने के लिए वह संदूक ले लो...उसमें ताला लगा कर चाबी फिर उनके पास ही दे देना।

—बात यह नहीं ...दरअसल माँ को भी मालूम है कि उस घर को बनाने में मैंने बचपन से आज तक कितना संघर्ष किया है। एक-एक चीज़ जोड़ कर रखी है मैंने। फिर भी उस घर पर मेरा कोई अधिकार नहीं है...लड़की जो हूँ मैं।

उसकी इस बात को सुन कर मुझे स्त्री-विमर्श के बड़े-बड़े दावे खोखले लगने लगे। यह लड़की जो ज़िंदगी के हर मोर्चे पर संघर्ष कर रही है। उसके मुँह से भी ऐसा बेचारगी भरा स्वर सुन कर मैं विचलित हो उठा था। वह आगे कहती है—यहाँ तक कि भाइयों के लड़कों को पढ़ाया-लिखाया...माँ-बाप की देखभाल...अब भी मैं ही करती हूँ। अपने लिए मैंने आज तक कुछ भी नहीं सोचा 32 साल की हो गई हूँ...अगर चाहती तो कब का अपना घर बसा लेती...शादी के कितने ही ऑफर आए। अपनी पसंद के जीवन साथी का चुनाव कर सकती थी। मैं...आज जिस मुकाम पर हूँ, मुझे लड़कों की कमी नहीं। एक से बढ़ कर एक लड़के मिल सकते थे।

उसके आँसुओं के आवेग के साथ ही उसके अंदर का ज्वार भी कम हो गया था।

—अरे मैं भी क्या रोना लेकर बैठ गई। अपने चेहरे पर हल्की सी मुस्कान लाते हुए वह बोली—वैसे मैंने कभी भी किसी से अपने दिल की बात नहीं कही है...तुम अपने हो इसलिए कह दिया।

—कोई बात नहीं दिल का दर्द अपनों के साथ ही बाँटा जाता है। वैसे भी

दिल की बात कहने और रोने से मन हल्का हो जाता है। इसी बहाने चलो ये उदासी के बादल तो छटे...भले ही कुछ देर बरस कर इस फूल से चेहरे पर चंद ओस की बूंदे भी टपका गए। वह बच्चों की तरह मचल कर मेरी बाँहों में समा गई—गंदे कहीं के। उसकी इस बात में प्रेम का गहरा संवेग सा था...जबकि तरल आँखों में मानो प्रेम के अंकुर प्रस्फूटित हो रहे थे। वह मेरी गोद में कुछ इस तरह से पसरी हुई थी...मानों पहाड़ की चोटी पर चाँदनी बिखरी हो।

...चाय की चुस्कियों के साथ ही बातों का सिलसिला फिर शुरू हो जाता है। मैं उसे छेड़ने के अंदाज़ से कहता हूँ—तुम्हारी ज़िंदगी में संघर्ष के अलावा कुछ और भी है या नहीं?

—मतलब..?

—यही थोड़ा सा प्यार...थोड़ी सी शरारत...ढेर सारी मस्ती और। मेरी बात पूरी होने से पहले ही वह बोल पड़ती है—और क्या?

—और थोड़ा बहुत रोमांस। इसके बिना तो कहानी में रंग नहीं जमेगा।

—तुम क्या समझते हो मेरी ज़िंदगी में कोई रंग नहीं है। मेरी ज़िंदगी में बहुत सारे शेड्स हैं अब तक वह उदासी के आवरण से पूरी तरह से बाहर निकल चुकी थी।

—तो फिर प्यार के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है। मेरे इस प्रश्न के लिए वह मानो पहले से ही तैयार थी। मेरी आँखों में आँखें डालते हुए वह बोली। प्यार ...खूबसूरत अहसास है। यह महज जिस्मानी नहीं होता जिसे तुम चाहो वो ज़रूरी नहीं दिखने में सुंदर हो...दैहिक सौंदर्य कोई माने नहीं रखता...सच्चा प्यार तो आंतरिक ख़ूबसूरती को तलाशता। पर...सच्चा प्यार आज के दौर में संभव नहीं है। उसके दार्शनिक अंदाज़ से मैं हैरान था। वह जैसे प्यार में रूहानियत की तलाश में थी। कहने लगी—दैहिक सुख तो क्षणिक है...मगर यह सच्चा प्यार नहीं और न ही इसमें सच्चा सुख है।...सिर्फ़ भटकाव है और कुछ नहीं।

—फिर भी ज़िंदगी में पहला प्यार तो सभी को होता ही है..तुम्हें भी हुआ होगा। मैं उसे कुरेदने का प्रयास करता हूँ।

तपाक से वह कहती है—हाँ...हुआ है। शायद यह प्यार ही तो था...पर मुझे नहीं उसे हुआ था मुझसे। इस बात को मैं अब महसूस करने लगी हूँ।

—कौन था वो ख़ुश नसीब?

—छोटे साहब...सब उसे छोटे साहब ही कहते थे...वैसे नाम तो अभिषेक है। बचपन की बात है यह भी। सेब के सीजन में वह अपने परिवार के साथ आया था। मैनेजर ने उसे बग़ीचा घुमाने के लिए मेरी ड्यूटी लगा दी थी। वह जैसे स्मृतियों की खिड़की से पुराने मंजर को देखने लगी थी।

—उस रोज़ मैनेजर ने बातों ही बातों में कहा कि कल संतराम साहब आने वाले हैं। संतराम मालिकों की सारी संपति की देखरेख करते थे। इसलिए उन्हें सब साहब ही कहते थे। मैनेजर ने कहा कि—उनका बेटा भी साथ आ रहा है...वह भी कुछ दिन यहाँ रहेगा। मैनेजर की बात सुन कर रेवती के मन में संतराम और उसके बेटे को देखने की सहज जिज्ञासा उत्पन्न हुई...कैसा होगा संतराम और उसका बेटा।

उस रोज़ एक लंबी सी गाड़ी बग़ीचे के गेट से होती हुई आई। मैनेजर ने सबको आगाह कर दिया कि संतराम और उसका बेटा आ गए हैं...सब अपने-अपने काम में जुट जाओ और लांगरी को हिदायत दे दी कि जैसे ही वे यहाँ पहुँचे तो जल्दी से चाय ले आना। गाड़ी के रुकते ही संतराम और उसका बेटा अभिषेक नीचे उतरे। मैनेजर ने संतराम का अभिवादन फ़ौजी अंदाज़ में सैल्यूट कर किया और उसके बेटे के गाल को सहलाते हुए कहा—और जी छोटे साहब आप कैसे हैं? रेवती सेब के ढेर के पास उल्टे पड़े किल्टों की आड़ से उत्सुकता वश उन दोनों को देख रही थी। मानो वे किसी दूसरी दुनिया के प्राणी हों। अपनी जिज्ञासा शांत करने के पश्चात वह फिर अपने काम में जुट गई थी।

दूसरे दिन मैनेजर ने उसे बुलाकर कहा—ओ साली सुन तो! किल्टा यहीं छोड़! छोटे साहब बग़ीचा देखना चाहता है...उसे बग़ीचे में घुमा ला। रेवती ने भी हुक्म की तालीम करते हुए अपनी रस्सी और दराती उठाई और चल पड़ी बग़ीचे की ओर...उसके पीछे सधे क़दमों से अभिषेक भी चल रहा था। क्योंकि बग़ीचे की ढलान उतरने का वह आदि नहीं था। जब तक वह एक खेत से दूसरे खेत तक पहुँचता...रेबू दराती से घास का पुल्ला काट कर नीचे की ओर फेंक देती। शाम तक उसे घास का गट्ठर पूरा जो करना था। चलते-चलते वह कभी उससे पेड़ों के नाम पूछता...झाड़ियों और घास के बारे में सवाल करता तो वह दो टूक जवाब देकर फिर अपने काम में जुट जाती। हाँ कहीं पर वह फिसल कर गिर जाता तो उसे उठाने के लिए दौड़ कर हाथ बढ़ा देती...तब उसे क्या मालूम था कि इस तरह के स्पर्श की क्या अनुभूति होती है। यह सिलसिला कई दिनों तक जारी रहा...हर रोज़ वह बग़ीचा घूमने की ज़िद करता और मैनेजर रेबू को उसके साथ भेज देता। अब दोनों में अजनबीपन नहीं रहा था। अभिषेक ने उससे पूछा था—तुम्हारे मम्मी-पापा क्या काम करते हैं। इस सवाल को सुन कर वह चौंक उठी थी। घर में कभी अम्मा और बापू को मम्मी-पापा नहीं कहा था...उसने। कुछ पल खामोश रहने पर बोली थी—पापा खेती-बाड़ी करते हैं और मम्मी घर का काम करती है। कहने को तो वह कह गई थी...पर अंदर ही अंदर उसे लगा कि हम दोनों में कितनी असमानता है...मालिक और नौकर की तरह।

मगर जल्दी ही वह इस भावना से उबर भी गई थी। अपने काम में मस्त रहने वाली वह सेब तोड़ने के लिए सबसे ऊपर की टहनी पर पहुँच जाती...और सेब के पेड़ पर बैठ कर सेब खाते हुए लोकगीत गाने लगती...मानो वह दूसरी पहाड़ी पर बसने वाले लोगों को अपनी सुरीली आवाज़ सुनाना चाहती हो। उसके साथी उससे गीतों की फरमाईश करते और वह कभी लामण...तो कभी भौरू और नाटी गाने लगती। उसकी हिम्मत बढ़ाने के लिए दूसरे मज़दूर भी एक स्वर में बोल उठते...शाबाशे...शाबाशे। अभिषेक के लिए रेबू अब एक अनबुझ पहेली बन गई थी। एक ओर वह कठोर, मेहनती और उजड्ड सी लड़की...जो किसी भी काम में मर्दों से पीछे नहीं रहती। दूसरी ओर उसके गले का माधुर्य और कोमलता मानो कानों में रस घोल देती...

एक दिन वह घास का कोठा लगा रही थी। कुछ मज़दूर घास के गट्ठर उसकी ओर फेंक रहे थे...और वह उसी गति से घास का कोठा लगा रही थी। मगर एक शरारती लड़के ने ट्रक से उसके सिर पर घास का गट्ठर फेंक दिया। जिससे वह निचे जा गिरी। बस फिर क्या था, अभिषेक ने न आव देखा न ताव और उस लड़के का गिरबान पकड़ लिया—तुझे शर्म नहीं आती एक लड़की पर इस तरह से घास का गट्ठर फेंक दिया...अगर उसकी गर्दन टूट जाती तो। मगर इस सबसे बेपरवाह रेबू कपड़ों की मिट्टी झाड़ने लगी। अभिषेक ने उसे सहारा देकर उठाते हुए कहा—यार रेबू अजीब लड़की है तू भी। आख़िर क्यों करती है तू ऐसा...मर्दों का मुकाबला करके क्या साबित करना चाहती है तू? उसने दोनों बाँहों के घेरे में लेकर उसे उठाया था। मगर वह बेपरवाह सी जाकर फिर से घास के कोठे पर चढ़ गई थी।

कुछ दिनों के बाद अभिषेक वापस चंडीगढ़ लौट गया था। उसके मन में रेवती की यादें बसी थीं। सपने में भी वह उससे बातें करता रहता। कभी वह पीठ पर सेब की पेटियों का बोझ उठाए उसके सामने अवतरित होती तो कभी पेड़ की सबसे ऊँची टहनी पर लगे सेब को उसे लाकर देती। बग़ीचे में चलते हुए वह गिरता तो वह ज़ोर से खिलखिला कर हँस देती। उसे लगा कि वह रेबू को अपने साथ चंडीगढ़ ले आया है। अपनी गाड़ी में उसे वह रॉक गार्डन, सुखना लेक और शहर के गोल चौराहों से होकर किन्नू के बग़ीचे में ले गया है। जहाँ किन्नू के छिलके का रस उसकी आँखों में डाल कर उसे सताने लगता है। इसी बीच वह उसे पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाता है तो मेज़ पर रखा शीशे का गिलास फर्श पर गिर कर टूट जाता है और उसकी नींद भी टूट जाती है। वह देर तक कमरे के ख़ालीपन को घूरता रहता है...और हल्की सी मुस्कान उसके चेहरे पर बिखर जाती है।

सपने तो रेबू भी देखती है। उसके सपनों की दुनिया भले ही हसीन और रंगीन थी। मगर उसकी वास्तविक ज़िंदगी सपनों से कहीं अलग थी...जो खुरदरी थी, कठोर और पत्थरीली भी थी...जिसके चलते उसके सपनों का सफ़र कंटीली पगडंडियों से होकर गुज़रता था...जहाँ से गुज़रते हुए उसके क़दम लहुलुहान हो रहे थे। बचपन में उसने बापू से चंद्रा परी और नीमा पुहाल की प्रेम कहानी सुनी थी। जब नीमा पुहाल की बाँसुरी की मुधर धुन को सुन कर चंद्रा परी चाँदनी रात में झील से बाहर आकर उससे प्रण्य लीला में मग्न हो गई थी। उसने अपनी परी का रूप छोड़ कर नीमा से इस शर्त पर शादी कर ली थी कि वह उसकी वास्तविकता किसी से नहीं बताएगा। मगर भाभी के ज़ोर देने पर नीमा पुहाल ने जैसे ही चंद्रा परी की वास्तविकता उजागर की वह उसे छोड़ कर सदा के लिए परी लोक चली गई। रेवती को भी लगा कि अभिषेक और उसका रिश्ता भी नीमा पुहाल और चंद्रा परी की तरह ही असमान है। जो कभी हक़ीक़त की सरहदों को पार नहीं कर पाएगा।

अभिषेक ने रेवती के लिए मैनेजर के हाथों गिफ्ट पैक भेजा था। मगर रेवती ने उसे लेने से इंकार कर दिया। वह बोली—मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती...मेरे बापू को पता चलेगा तो वह मुझे ज़िंदा नहीं छोड़गा। रेवती का मानना था कि इस तरह की भेंट को स्वीकार करने का मतलब है कि उसने अभिषेक के प्रेम प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। हालाँकि, मैनेजर ने उसे विश्वास दिलाया था कि वह इस बारे में उसके बापू से भी बात कर सकता है...उसके बाद वह उसे कुछ नहीं कहेगा। पर रेबू अपनी ज़िद पर अड़ी थी। इसके बाद अभिषेक के कुछ दिनों तक पत्र भी आते रहे ...रेवती उन्हें कभी पढ़ कर तो कभी बिना पढ़े ही फाड़ देती थी। उसने जैसे-तैसे करके अपनी पढ़ाई को जारी रखा...अब वह बापू से भी नहीं डरती थी...दोनों में कभी कभार जम कर वाकयुद्ध हो जाता था। गाँव में भी उसको लेकर तरह-तरह के चर्चे थे। लड़की बिगड़ गई है। अपने बाप की नाक कटा कर रखेगी। कालेज में पढ़ती है...लड़कों के साथ उठती-बैठती है...कपड़े पहनने का ढंग नहीं है...नाटकों में काम करती है...गाने गाती है। न जाने ऐसी कई बातें उसके बारे में फैला दी गई थी। मगर इन सबकी परवाह किए बिना वह अपनी मंज़िल की ओर अग्रसर थी।

कालेज में वह बीए अंतिम वर्ष में थी। एनएसएस के कैंप के दौरान कालेज के छात्र-छात्राएँ माता के मंदिर की सराय के लिए ईंटों की ढुलवाई कर रहे थे। रेवती भी उनमें शामिल थी। सड़क से मंदिर तक लाईन बनाकर लड़के लड़कियाँ हाथों-हाथ ईंटें एक दूसरे को पकड़ा रहे थे। अचानक सड़क पर एक लंबी गाड़ी रुकी। रेवती ने देखा तो सन्न रह गई। यह तो संतराम अंकल की गाड़ी थी। गाड़ी से

सूटबूट पहने अधेड़ व्यक्ति निकला, सब लड़के लड़कियाँ उसे देखने लगे। ईंटों की सप्लाई एकदम रुक गई। रेवती ने उसे पहचान लिया वह दौड़ कर उसके पास गई—अंकल आप। और वह उसके गले लग गई।

संतराम ने उसका हालचाल पूछते हुए कहा—कैसी हो बेटी...तुम्हारे घर वाले कैसे हैं।

—सब ठीक हैं अंकल...आप सुनाओ आप कैसे हैं। उसने जानबूझ कर अभिषेक के बारे में कुछ नहीं पूछा।

मगर संतराम ने स्वयं ही बात शुरू कर दी—अभिषेक ने इंजीनियरिंग कर ली है। अब वह टाटा में ही नौकरी लग गया है। रेवती ने इस पर कुछ नहीं कहा।

संतराम ने फिर कहा—बेटी अभिषेक अभी तक तुम्हें नहीं भुला पाया है...वह तुझे अब भी याद करता है। उसने मुझसे कई बार कहा है कि पापा वह सेब तोड़ने वाली लड़की बहुत याद आती है। तुने जो गिफ्ट वापस किया था...वो आज भी उसके पास है। रेवती की आँखों में आँसू छलक आए थे...मगर बोली कुछ भी नहीं। वह जैसे पत्थर की मूरत बन गई थी। संतराम ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा था—गॉड ब्लैस यू बेटी। और गाड़ी स्टार्ट कर वहाँ से चले गए। देर तक धूल का गुब्बार हवा में तैरता रहा। इसके बाद कुछ देर के लिए रुकी ईंटों की सप्लाई फिर से शुरू हो गई।

मगर रेवती के मन का द्वंद्व जारी था। उसने अभिषेक के प्रस्ताव को ठुकरा कर अपनी ज़िंदगी को फिर उसी संघर्ष की पगडंडी पर लाकर खड़ा कर दिया था। कालेज की पढ़ाई भी वह कितनी कठिनाई से कर रही थी। बापू ने तो उस दिन से ही घर से खर्चा देना बंद कर दिया था। जब उसने बड़े बुजुर्गों द्वारा करवाई जा रही अपनी शादी से साफ़ मना कर दिया था। उसके समाज में बड़े-बुजुर्गों द्वारा तय की जा रही शादी की बात न मानना बगावत थी...और रेबू ने यह बगावत कर डाली थी। उसे याद है, चुल्हे के पास बैठे बापू और कुछ मेहमान आपस में शादी की तारीख़ तय कर रहे थे। रेवती खिड़की की ओट से यह सब सुन रही थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि यह किसकी शादी की बात हो रही है...कहीं ये लोग मेरी ही शादी की बात तो नहीं कर रहे हैं। वह हड़बड़ाहट में कमरे में दाखिल हुई—आप लोग किसकी शादी की बात कर रहे हैं? रेवती ने कमरे में प्रवेश करते ही अपने बापू से सवाल किया।

—तेरी शादी की बात हो रही है और किसकी? बड़ों के बीच तू क्यों आ गई चल बाहर जा।

—मगर मेरी शादी के बारे में मुझसे तो पूछना चाहिए था आपको...ऐसे कैसे

बिना पूछे ही तय कर दी आपने मेरी शादी...मेरी मर्जी तो पूछ लेनी चाहिए थी।

अब बापू को भी गुस्सा आ गया था—पढ़-लिख क्या गई है जबान चलाने लगी है...तेरी मर्जी हम क्यों पूछेंगे। क्या कभी भेड़ की ऊन उससे पूछ कर उतारी जाती है।

—तो क्या मैं भेड़ से भी गई गुज़री हो गई? रेवती भड़क उठी थी। देखती हूँ आप लोग कैसे करवाते हैं मेरी शादी...पुलिस में रिर्पोट करूँगी आप सबकी...समझते क्या हैं आप लोग। उसकी इस धमकी का असर बापू पर तो नहीं पर रिश्ता लेकर आए लड़के वालों पर हुआ ...वे लोग शगुन के गहने वापस लेकर लौट गए। इसके बाद रेवती भी शहर में आकर रहने लगी थी। मगर उसका असली संघर्ष शहर आकर ही शुरू हुआ था। बीडीओ आफ़िस में पाँच सौ रुपए की नौकरी तो उसे मिल गई थी। लेकिन चार सौ रुपए में शहर के कोने में उसे एक कमरा मिल गया था। मकान मालिकों के घर में काम करने पर उसे एक समय का खाना भी मिल जाता था। इसके बदले में उसे उनकी गाय के लिए घास लाने के अलावा घर के बर्तन साफ करने, कपड़े धोने और मेहमानों की आवभगत करनी पड़ती थी। इससे जो समय बचता था वह उसका अपना था...जिसका सदुपयोग वह पढ़ाई तथा खड्डी पर शॉल के बार्डर आदि बुनने में करती। जिससे किसी तरह उसका गुज़ारा चल रहा था। इस सब के बीच उसे सेब का वह पेड़ याद आता जिसकी सबसे ऊँची चोटी से वह सेब तोड़ कर लाती थी। काश। शहर में भी सेब का पेड़ होता तो वह चिड़िया की तरह उड़कर उसकी डाली पर बैठकर चहक उठती।

कथाक्रम, 2009

गुफा-तंत्र

बरसात का मौसम था। आषाढ़ का आख़िरी दिन...शायद शनिवार रहा होगा...दोपहर के एक-डेढ़ बजे का समय था। मैं इस रहस्यमयी गुफा की खोज के लिए निकल पड़ा था। मेरे साथ दो और लोग थे...वास्तव में वे ही इस मिशन में मेरे पथ प्रदर्शक थे। इनमें एक था विजय उर्फ़ बिजू जिसके साथ मैंने कभी थियेटर में काम किया था...और दूसरा शख्स मेरे लिए इससे पूर्व अजनबी था...हाँ, एक घंटा पहले ही उससे मुलाक़ात हुई थी...पर शायद पूरी तरह से उसे मित्रता की कसौटी पर कस नहीं पाया था...मेरे लिए वह अब भी रहस्यपूर्ण व्यक्तित्व ही था...शंभुनाथ नाम था उसका...बिजू ने परिचय करवाया था कि वह कुछ तंत्र-मंत्र भी जानता है...पहुँचा हुआ तांत्रिक है वह...उसे सपने में उस गुफा के दर्शन होते थे जिसे हम आज खोजने निकल पड़े थे।

पहली ही नज़र में वह रहस्यमयी लगा था...गठीला बदन...गोरा रंग, माथे पर लंबा सा टीका...और उम्र कोई चालीस-पैंतालीस साल के बीच रही होगी। वह बीच-बीच में लंबी साँस लेते हुए ओम नमः शिवाय का उच्चारण करता। उसकी अंगारों जैसी लाल आँखें मुझे डरावनी सी लगी थीं। मगर वह बिजू के साथ आया था तो ज़्यादा तहकीकात करने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई ...और मैं गुफा की खोज में उनके साथ चल दिया था।

शंभुनाथ ने कहा था—मुझे कई बार सपने में वह गुफा दिखाई दी है...कितनी भव्य, कितनी विशाल! जैसे साक्षात देवलोक! मगर कहाँ है इसका पता मुझे नहीं।

—फिर?

—फिर क्या, भगवान भोलेनाथ ने मुझे दर्शन देने थे...सो उन्होंने रास्ता भी बता दिया। शंभुनाथ बड़ी तल्लीनता से उस रहस्यमयी गुफा के बारे में बताने लगा...और मेरी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। मैंने उसे बीच में टोका—पहले यह बताओ यह गुफा है कहाँ? और तुम वहाँ कैसे पहुँचे?

उसने बताया कि एक सपेरा उसका दोस्त है। वह अक्सर अपने शिकारी कुत्तों के साथ जंगल में गोह और सैहल के शिकार के लिए भटकता रहता है। सबसे पहले उसी ने यह गुफा देखी थी...इस बारे में उसने जो भी बताया वही मैंने सपने में देखा था। शंभुनाथ की बातें अविश्वसनीय थी पर इस समय मैं उस पर विश्वास कर सकता था। क्योंकि वह दृश्य मैंने अपनी आँखों से नहीं देखा था...इसलिए इस बारे में केवल कल्पना ही कर सकता था...वह बोले जा रहा था—जब मैं वहाँ पहुँचा तो साक्षात अमरनाथ के दर्शन हुए...कहीं शंख, कहीं शेषनाग के फन, शिवलिंग, और हज़ारों तरह की कलाकृतियाँ...क्या अद्‌भुत दृश्य था वह...टार्च की रोशनी में वे कलाकृतियाँ ऐसे चमकती मानो हीरे चमक रहे हों। अद्‌भुत मायालोक था वह।

—और मैं बिना सोचे समझे ही उनके साथ चलने को राजी हो गया...ज़िंदगी में ऐसे रोमांच का मौक़ा कम ही मिलता है...बाज़ार से दो टार्चें ख़रीदी और हम अपने गंतव्य की ओर चल पड़े।

उस जगह पर सन्नाटा था...दूर तक विरान। आसमान की ओर सर उठाए पहाड़ियाँ और बीच में संकरी पगडंडी...हम तीनों चुपचाप आगे बढ़ते जा रहे थे। एक अजीब तरह की खामोशी...भीतर तक उतरता भय...दहशत, टूटन, थकान और साथ ही पश्चाताप के भाव मेरे चेहरे पर उभर रहे थे...जिन्हें मैं दबाने का निरंतर प्रयास कर रहा था। सारा बदन पसीने से तर-ब-तर था...पता नहीं यह सब हरियाली के बीच उमस भरे माहौल का असर था या फिर मेरे भीतर बैठा अंजाना भय। सच्च कहूँ तो अब मैं अपने फ़ैसले पर पछता रहा था। उस बियावान जंगल में वे दोनों मुझे अगवा करने वाले आतंकी से लगे...हो सकता है किसी प्रेतात्मा की सिद्धि के लिए मुझे बलि का बकरा बनाया हो। महबूबा की नज़र और आदमी की नियत कब बदल जाए किसे पता? ऐसे क़िस्से मैंने पढ़े और सुने हुए थे...दबे ख़ज़ाने को निकालने के लिए नरबलि की कथाएँ भी बचपन में सुन रखी थी। रास्ते की विरानगी और मन में बैठी दहशत मुझे अंदर से कमज़ोर कर रही थी। जबकि ऐसी परिस्थिति में आदमी को भीतर से मजबूत होना पड़ता है...कहते हैं हिम्मते मर्दा...मदद-ए- ख़ुदा। पर यहाँ मेरी सारी हिम्मत जवाब देती जा रही थी।

अब वे दोनों पगडंडी छोड़ जगल में घुस गए...उनके पीछे थोड़े ही फासले पर मैं भी था। मेरी हालत ऐसी थी मानो किसी ने बंदूक़ की नोक पर अगवा कर रखा हो। शंभुनाथ ने सामने की पहाड़ी की ओर इशारा किया—वो जो सामने बड़ी चट्टान दिखाई दे रही है...उसी के नीचे है गुफा। वहाँ तक पहुँचने का कोई सीधा रास्ता नहीं था। घना जंगल, देवदार, बुरांस और बान के विशालकाय पेड़ों से घिरा यह क्षेत्र वन्य जीवों का आशियाना था। कँटीली झाड़ियों के बीच बड़ी सावधानी से

क़दम रखना पड़ रहा था...जंगली जानवरों भालू और तेंदुए के अलावा साँपों का भय अलग...सन्नाटे के बीच पास ही किसी पेड़ पर कठफोड़े की ठक-ठक हवा के संगीत की ताल से ताल मिला रही थी।

दूर कहीं घाटी में मोर-मोरनी का जोड़ा अठखेलियाँ कर रहा था...तभी झाड़ियों के बीच से जंगली मुर्गे ने उड़ान भरी तो मैं चौंक उठा। वन्य प्राणियें से भरा पूरा जंगल है यह...रियासत के जमाने की शिकारगाह रहा है। बचपन में दादा से सुना था कि रियासत का राजा आखेट के लिए यहाँ आया करता था...राजा अपने ख़ास निशानची के साथ मचान पर बैठता था...जबकि प्रजाजन चारों तरफ़ से शोर मचाकर जंगली जानवर को घेर वहाँ तक लाते थे...उन लोगों को चाहड़ू कहा जाता था...जंगल में एकाएक गूँजते शोर से जंगली जानवर बिदक उठते ...और उस दिशा में बदहवास भागते जानवर पर राजा और उसका निशानची बंदूक की गोली दाग देते ...ठाँय...ठाँय और शिकार चित।

मुझे लगा कि मैं भी इन दो चाहडुओं द्वारा घेर कर गुफा की ओर हाँका जा रहा हूँ...जहाँ मचान पर बैठा कोई निशानची दम साधे मेरा इंतज़ार कर रहा है ...मैं एक बार रुका और पीछे मुड़ कर देखा...रास्ता बहुत पीछे छूट गया था...मन में आया चलो यहाँ से भाग निकलें! भाड़ में जाए गुफा...मगर दूसरे ही पल यह सोचा कि ये लोग मुझे कायर समझेंगे। अब जो होगा देखा जाएगा...ज़िंदगी में कई मुकाम ऐसे भी आते हैं जब लगता है कि आदमी का अस्तित्व ही मिट जाएगा...इसके बावजूद उम्मीद की हल्की सी लौ अंधेरी राह को आलोकित कर मंज़िल की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती है।

अब हम गुफा के मुहाने पर थे। दो बाई ढाई फुट के इस मुहाने से आदमी तो नहीं, पर शिकारी कुत्ता ही आसानी से घुस सकता था। अंदर कोई जंगली जानवर न जा सके...इसे पत्थरों से बंद कर दिया गया था...हम तीन आदमी इस संकरे रास्ते से अंदर कैसे जाएँगे? अभी मैं सोच ही रहा था कि वे दोनों अपने कपड़े उतार कर पत्थर हटाने लगे।

—अगर इस तरह अंदर जाएँगे तो सारे कपड़े खराब हो जाएँगे। शायद यह इशारा मेरी ओर ही था...तुम भी कपड़े उतारो और हो जाओ तैयार...बलि के लिए। ज़िंदगी में पहली बार मुझे मौत का डर सताने लगा...अगर मुझे कुछ हो गया तो ...बीवी-बच्चों का क्या होगा?

—सोच क्या रहे हो...कपड़े उतारो और चलो अंदर। बिजू का आदेशात्मक स्वर सुन मैं सिहर उठा। फिर वह शंभुनाथ से कहने लगा—तुम सबसे आगे चलो...आपके पीछे भाई साहब और इनके पीछे मैं चलता हूँ।

गुफा का मुहाना देख मैंने सवाल किया—इस संकरे रास्ते से तीनों अंदर कैसे जाएँगे?

—हम पहले भी गए हैं...दस बारह फुट तक लेट कर जाना पड़ेगा...फिर उसके बाद तो खुली जगह है।

दोनों ने एक-एक टार्च थाम ली। और मैं डरा...सहमा सा...मानो गुफा के अंदर जल्लादों द्वारा बलि के लिए ले जाया जा रहा हो! सोचने लगा रेंगते हुए आगे वाला प्रहार करेगा या फिर पीछे से वार किया जाएगा पता नहीं? मेरे शरीर मेंऐसी सिहरन हुई जैसी बलि से पूर्व बकरे के शरीर पर पानी डालने के बाद कंपन्न होती है...वे दो और मैं अकेला...उनका मकसद भी एक हो सकता है। आगे वाले की हरकत पर तो मैं नज़र रख सकता हूँ मगर अंधेरी गुफा में पीछे से वार किया तो? सारे बदन में अजीब सी सरसराहट होने लगी...मौत से पहले शायद यही हालत होती होगी? मौत का आतंक मैंने आज महसूस किया था। मन के किसी कोने से एक उम्मीद सी जगी, ये दोनों मुझे क्यों मारेंगे? मैं तो इन्ही के काम से आया हूँ...और फिर बिजू भी तो मेरा अपना ही है...डूबने वाले को तिनके का सहारा ... मैंने हिम्मत बटोरी, इसके सिवाय और कोई चारा भी नहीं था। ...ज़िंदगी में पहली बार किसी गुफा में घुस रहा था। घुटनों के बल रेंगते हुए पहली बाधा पार की...कोहनी...बाजू...गोडे और टाँगें नुकीले पत्थरों से छिल गई...जगह-जगह से ख़ून निकला...दर्द भी हुआ, पर सह गया।

घुप अंधेरी गुफा में टार्च की रोशनी पड़ते ही...वहाँ पर बनी कलाकृतियाँ चमक उठी...कुदरत के अद्‌भुत रचना संसार से हुए साक्षात्कार ने सारा दर्द भुला दिया...अंदर से बीस फुट ऊँची और चालीस फुट लंबी गुफा में दो घंटे से भी ज़्यादा समय बीत गया। यह किसी दूसरे ही लोक में विचरनें का अनूठा अनुभव था...सारी चिंताएँ, विशाद, कुंठाएँ और मौत का डर भूल गया। शंभुनाथ किसी विशेषज्ञ गाईड की तरह गुफा के एक-एक पत्थर...कलाकृति के बारे में बताने लगा ...गुफा भी किसी पाषाण कलादीर्घा जैसी थी...मानो छेनी और हथौड़ी से पत्थरों को तराशा गया हो।

गुफा से बाहर निकले तो जान में जान आई...कुछ इस तरह का अहसास हुआ मानो माँ की कोख से निकले हों। गुफा में ऐसा बहुत कुछ था ...जिसे उजागर किया जाना ज़रूरी था...बूंद-बूंद पानी द्वारा हज़ारों सालों के श्रम से रचा यह रचना संसार वास्तव में अद्‌भुत था।

दूसरे दिन उस विराने में मेले जैसी भीड़ थी। अख़बार में फोटो सहित लीड ख़बर छपी थी—पांडव टीले के पास मिली रहस्यमयी गुफा। जिसने भी यह खबर

पढ़ी वह चमत्कारी गुफा को देखने निकल पड़ा...वह जगह तो जैसे जागृत हो उठी थी। गुफा के बाहर लोगों की भीड़...धक्कमपेल...हर कोई अंदर जाने के लिए उतावला...मगर चार-पाँच लोगों से अधिक अंदर नहीं जा सकते थे। शंभुनाथ ने कुछ छोकरे व्यवस्था सँभालने के लिए तैनात कर रखे थे। जो भी अंदर से बाहर निकलता वह गुफा के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर बात करता...भीड़ और उतावली होने लगी। धक्कमपेल बढ़ने लगी...मैंने भी अंदर जाने की कोशिश...मगर पीछे धकेल दिया गया।

सावन का महीना शुरू हो गया था ...बारिश की रिमझिम फुहार बरस रही थी...जंगल में प्रणयलीला में लीन मोर के जोड़े की केंओं-केंओं की ध्वनि के बीच श्रद्धालु महिलाओं द्वारा गाए जा रहे भजनों के स्वर घाटी में गूँज रहे थे...गुफा क्या मिली जंगल में मंगल हो गया था...शंभुनाथ के स्वयं सेवकों ने गुफा तक जाने वाली झाड़ियाँ काट कर रास्ता बना दिया था। ...आनन-फानन में ही प्रधान की अध्यक्षता में बैठक बुलाई गई। जिसमें स्थानीय लोगों ने शिरकत कर इस जगह को धार्मिक पर्यटन स्थली के रूप में विकसित करने का संकल्प लिया। गुफा के इतिहास को खंगालने और इसे कलमबद्ध करने के लिए शंभुनाथ की अध्यक्षता में कमेटी गठित कर दी गई। उसने गुफा के अंदर की व्यवस्था का जिम्मा सँभालने का तिकड़म भी भिड़ा लिया गया...एक तरह से वह गुफा का स्वंयभु मठाधीश बन बैठा था। भगवा चोले में वह एकदम बदला हुआ लग रहा था...कल से आज तक उसके व्यवहार में कितना परिर्वतन आ गया था। उसके इस बदले हुए रूप को देख मैं भी दंग रह गया। ऐसा कर वह अपने मकसद में कामयाब हो गया था...उसका असली मकसद क्या है ? अब यह जानना ज़रूरी हो गया था। स्थानीय लोगों ने गुफा के संचालन के लिए कमेटी का गठन कर दिया था...और शंभुनाथ ? वह तो बाबा शंभुनाथ बन गया था। उसने गुफा के अंदर ही एक कोने में धूना रमा लिया था।

गुफा के बाहर लोहे का बड़ा सा दानपात्र रख दिया गया...जिसमें आस्था...श्रद्धा और अंधविश्वास के नाम पर धन वर्षा होने लगी...जबकि अंदर हर कलाकृति के आगे त्रिशूल गाड़ दिए गए...शिवलिंगनुमा पत्थरों की पूजा होने लगी। ...गुफा के प्रकट होने की ख़बर सुनकर दूर-दूर से आये लोग दर्शन लाभ प्राप्त करने लगे। बात जिला प्रशासन के कानों तक भी पहुँच गई...गुफा प्रबंधन कमेटी के कर्ताधर्ता उपायुक्त से मिले। उन्हें गुफा के चमत्कार से अवगत करवाया गया...कुछ मदद की गुहार लगाई...और, लगे हाथ दर्शन करने का न्योता भी दे डाला।

ज़िला प्रशासन ने भी धर्म के कार्य में आहुति डालने में कोई कमी नहीं छोड़ी...तत्काल बिजली, आईपीएच और पीडब्ल्यूडी महकमे के अधिकारियों को

निर्देश हो गए। दो ही दिन में गुफा तक बिजली पहुँच गई...हालाँकि, पास के गाँवों में अब भी अंधेरा था...मगर गुफा ने तो चमत्कार ही कर दिया था...बिजली के बल्बों से घाटी जगमगा उठी थी...श्रद्धालुओं के लिए पानी के नल लग गए...रास्ता पक्का हो गया...जो यहाँ कभी नहीं हुआ वो अब होने लगा था। प्रधान ख़ुश था...गुफा उसकी पंचायत में थी। जाहिर था कि यहाँ पर होने वाले विकास का श्रेय उसी के खाते में जाने वाला था जिसे वह आने वाले चुनाव में वोट के रूप में भुना सकता था।

गुफा घने जंगल के बीच में थी। इससे पहले यहाँ से लोगों ने मिरग और भालू निकलते कई बार देखे थे। सर्दियों के दिनों में अक्सर मिरग चट्टान पर गुनगुनी धूप में लेटे रहते...उनकी चमकीली चितकबरी त्वचा दूर से ही दिखाई देती।

सर्दियाँ शुरू हो गई थी। अब गुफा का रोमांच लोगों में कम हाने लगा था। मगर बाबा शंभुनाथ अपने चेलों के साथ वहीं पर डटा था। इस बीच यूँ ही गुफा की ओर जाना हुआ...पर जंगल की आबोहवा में बदलाव सा लगा...पंछियों की चहचहाट कम हो गई थी...मोर की कोंओं...कोंओं भी नहीं सुनाई दी और न ही कलेसे और तीतर की परवाज देखी...ककड़ और घोरल भी किसी अजनबी के जंगल में घुसने की आहट से बिदके नहीं। अब ऐसा कुछ नहीं था। आख़िर वे जानवर कहाँ चले गए?...क्या उन सबको गुफा निगल गई या फिर जंगल ने ही अपनी इस अमूल्य संपदा को किसी और गुफा में छुपा लिया है?

पिछले कुछ दिनों से गुफा के पास रात को मिरगण दहाड़ती सुनाई देती...जंगल में उसे तीन नन्हें शावकों के साथ अक्सर देखा गया था...लोगों ने जंगल में घासपत्ती लाने अकेले जाना छोड़ दिया था। बच्चों वाली मिरगण हिंसक हो सकती है...आत्मरक्षा के लिए किसी पर भी हमला कर सकती है। मगर शंभुनाथ ने कुछ और ही अफवाह फैला दी थी कि जंगल में साथ लगती एक और गुफा है उसमें एक अघोरी साधू तपस्या कर रहा है...वह दिन में कई रूप धारण करता है...कभी मिरग तो कभी भालू बनता है...अपने इस रूप में वह आदमी पर हमला करता है...अब गुफा से ज़्यादा उस अघोरी साधू के चर्चे थे। जितने मुँह उतनी भाखा और कई गाथाएँ।

जंगल में विचरण करने वाली उस मिरगण का एक शावक अचानक ग़ायब हो गया था। अब वह अपने दो शावकों के साथ जंगल में ज़ोर-ज़ोर से दहाड़ती रहती। उसकी दहाड़ से जंगल का कोना-कोना दहल उठता। कहीं कोई नर मिरग इस जंगल में तो नहीं घुस आया है? अक्सर देखा गया है कि नर और मादा मिरग के बीच शावकों को लेकर जंग होती रहती है जो काफ़ी हिंसक होती है, मगर

किसी दूसरे मिरग के जंगल में होने का कोई सुबूत भी लोगों को नहीं मिला ...एक-एक कर तीनों शावक रहस्यमयी ढंग से ग़ायब हो गए थे...बच्चों के वियोग में वह हिंसक हो उठी थी...जंगल की सरहदों के उस पार जाकर वह लोगों के पालतु पशुओं पर हमला करने लगी थी।

और एक दिन। उसने ग़ज़ब ही कर दिया। जंगल के साथ लगती दोघरी में माँ की बगल में सोये जगत राम के दुधमुँहे बच्चे को रात के अंधेरे में उठाकर ले गई। अब वह आदमखोर हो गई थी। दहशत के मारे लोग शाम ढले घरों में दुबक जाते...बच्चों को अकेले घर से बाहर नहीं निकलने दिया जाता। जंगलात महकमा भी सक्रिय हो गया...मिरगण को पकड़ने के लिए पिंजरा लगाया गया। चारे के रूप में कुत्ते को बांधा गया...मगर वह हाथ नहीं आई। कुछ दिनों बाद अचानक मिरगण भी जंगल से ग़ायब हो गई थी। अब न तो उसकी दहाड़ किसी को सुनाई देती और न ही उसने किसी पर हमला किया। यह मात्र संयोग ही नहीं था। मेरा माथा ठनका...शंभुनाथ जो बार-बार अघोरी साधू की बात कर लोगों को भरमा रहा था...कहीं इसके पीछे कोई और ही तंत्र तो नहीं है ?

मिरगण ही नहीं जंगल से और भी दुर्लभ प्रजाति के वन्यप्राणी ग़ायब हो रहे थे। अब सुबह-सवेरे पांडव टीले के पास वाली घाटी में मोर और मोरनी का जोड़ा एक दूसरे को रिझाने के लिए कोअें...कोंअें की मधुर आवाज़ नहीं करता...जंगली मुर्गों और तीतर-बटेरों की उड़ानें भी कम हो गई थीं। और ककड़, घोरल भी न जाने कहाँ ग़ायब हो गऐ...या फिर ग़ायब कर दिए गए थे। इन जंगली जीवों की ग़ैर मौजूदगी में जंगल का सन्नाटा और भी भयावह लगता...मानो जंगल की धड़कन ही थम गई हो। क्या यह सब उस अघोरी साधू ने ही किया था? उसकी सिद्धि की आग में निरीह...बेजुबान वन्य जीव आहुति बनकर स्वाहा हो रहे थे...कहीं अघोरी के नाम का आतंक फैलाकर कोई और ही कुत्सित और घृणित इरादों को अंजाम तो नहीं दे रहा था ?

मुझे बार-बार न जाने क्यों शंभुनाथ पर शक हो रहा था। उसी ने ही तो यह गुफा तंत्र रचा था...दूसरी गुफा होने और अघोरी साधू की अफवाह फैलाई थी। इस सारे रहस्य से पर्दा उठाना अब ज़रूरी हो गया था...मगर बिना अंतिम सूत्र तक पहुँचे किसी पर आरोप लगाना भी ठीक नहीं।

सर्दियों का मौसम शबाब पर था। कड़ाके की ठंड हड्डियाँ निचोड़ रही थी...गुफा में लोगों की आवाजाही कम हो गई थी... वैसे भी अघोरी साधू होने की अफवाह के बाद से इस दिशा में लोगों का आना कम हो गया था। एक दिन शंभुनाथ मेरे पास आ धमका...वही जोगियों वाला वेश...चेहरे पर कुटिल मुस्कान...आँखों में

अंगारों सी दहक...उसकी सूरत भी किसी अघोरी से कम नहीं थी। बात ही बात में उसने बताया कि वह किसी सिद्ध तांत्रिक को लाने जा रहा है...ताकि दूसरी गुफा में बैठे अघोरी को वहाँ से खदेड़ा जा सके...शंभुनाथ की बातें उसके व्यक्तित्व की तरह रहस्यमयी लगी। अघोरी के इस रहस्य से पर्दा उठाना अब ज़रूरी हो गया था...अपने छायाकार दोस्त राजीव को इस मिशन में शामिल कर लिया था...मिशन गुप्त था...पर बेहद ख़तरनाक भी...आत्म रक्षा के लिए आवश्यक हथियार साथ ले रखे थे।

घाटी में अंधेरा होते ही हम गुफा में दाखिल हो गए। देर रात तक उस गुप्त रास्ते को तलाशते रहे...जिसका पता केवल शंभुनाथ को ही था...उसने एक बार बताया था कि जंगल की ओर खुलने वाली उस गुफा के लिए एक संकरा सा रास्ता वहाँ से भी है...जिसके बारे में उसके सिवाय और कोई नहीं जानता था...मगर गुफा का कोना-कोना छान मारा था...इस गुप्त रास्ते का सुराग़ हमारे हाथ नहीं लगा...अंत में थके हारे एक कोने में बैठ सुस्ताने लगे। राजीव ने अपनी आदत के अनुसार थकान मिटाने के लिए सिगरेट सुलगा ली थी...लंबे-लंबे कश खेंच कर वह ढेर सारा धुआँ मेरे मुँह की ओर फेंकने लगा...उसकी इस हरकत से परेशान मैंने सामने के पत्थर का सहारा ले कर उठने का प्रयास किया...तो वह थोड़ा सा हिला...मेरे मुँह से ज़ोर से निकला—मिल गया।

—क्या मिला? वह चौंका।

—दूसरी गुफा का रास्ता मिल गया।

—कहाँ है? वह टार्च की रोशनी मेरी ओर कर पूछने लगा।

—ये देख...पत्थर हिल रहा है। मैंने पत्थर को हिलाते हुए कहा—यही है वो गुप्त रास्ता। हम दोनों ने मिलकर उसे हटाया—सघन अंधेरे में संकरा सा रास्ता दिखाई दिया। बड़ी सावधानी से हम उस दिशा में क़दम बढ़ाते रहे। आख़िरी छोर पर थोड़ा ठिठके...गुफा के अंधर की टोह लेने के लिए अंधेरे में ही दम साधे बैठे रहे...कहीं कोई हरकत नहीं...घुप अंधेरा...रहस्यमयी सन्नाटा...सड़े हुए मांस की सड़ांध नुथनों से टकरा रही थी...देर तक खामोशी व्याप्त रही ...लेकिन वहाँ पर हम दोनों के सिवाय ज़िंदा प्राणी कोई नहीं था...टार्च की रोशनी गुफा में डाली तो आँखें आश्र्चय से खुली की खुली रह गई...यह गुफा नहीं कोई बूचड़खाना प्रतीत हो रहा था।

चारों तरफ़ मरे हुए जानवरों की खालें लटकी हुई थी...तेंदूए...ककड़...घोरल के अलावा विशालकाय साँपों की खालें भी वहाँ लटकी हुई थीं...थोड़ा आगे जाकर देखा तो मिरगण और उसके तीनों शावकों की खालें भी लटकी हुई थीं...और ज़मीन पर मोर...कलेसे और तीतर के पंखों के ढेर...कोने में खाली शराब की बोतलें बिखरी

पड़ी थीं। ऐसा लगता था कि यहाँ पर कई बार दावत उड़ाई गई थी। यह सब देख गुफा का रहस्य और भी गहराने लगा था...यहाँ कोई अघोरी साधू नहीं था...सारा तंत्र रचने वाला कोई और ही था। मिरगण बेचारी तो बेवजह बदनाम हुई...जबकि आदमी की खाल में भेड़िया कोई और ही निकला जो गुफा की आड़ में निरीह वन्य प्राणियों का शिकार कर उनकी खाल और दाँतों की तस्करी कर लाखों रुपए कमा रहा था। कहीं यह बाबा शंभुनाथ ही तो नहीं है इस तंत्र के पीछे? वह तो किसी तांत्रिक को लाने की बात कर रहा था...सारे गोरख धंधे में उसका वह सँपेरा साथी जो कभी लोगों के सामने नहीं आया। अंधेरे में मेरे पैर से लोहे की कोई चीज़ टकराई टार्च की रोशनी में देखा तो मिरग को पकड़ने को लगाई जाने वाली कड़ाकी थी...जिसका प्रयोग करना केवल सपेरा जाति के लोग ही जानते हैं। राजीव ने गुफा में मौजूद खालों, मिरग व भालू के नाखुनों के ढेर, पक्षियों के पंखों के ढेर और कड़ाकी...सब के फोटो ले लिए थे।

सुबह पौ फटने से पहले ही हम गुफा के रहस्य का बोझ सर पर उठाए बाहर निकल आए थे...वापस लौटते हुए मैं पांडव टीले की रहस्यमयी गुफा के इस रहस्य को उजागर करने के लिए ख़बर की अच्छी सी हैडलाईन के बारे में सोच रहा था।

अमर उजाला, 2007

माँ का चश्मा

माँ वापस गाँव लौट गई। और पीछे छोड़ गई, अंतहीन यादों का सिलसिला...थोड़ी सी उदासी, मायूसी और भावनाओं का प्रवाह...और भी बहुत कुछ। शहर में रहकर भी माँ के जहन में अपना वही गाँव बसता था। गाँव का पनघट, खेत-खलिहान...जंगल-चरान, नौण ...नाला और देवी का मंदिर ...ये सब माँ की यादों में बार-बार दस्तक देते रहते। माँ की एक तरह से अपनी अलग ही दुनिया थी जिसमें उसका अपना परिवेश बसता था...परंपराएँ और संस्कार उनमें रचे बसे थे। ऐसे में उसे तो अपने गाँव और अपनी दुनिया में वापस लौटना ही था। उस प्रवासी पंछी की तरह जो हज़ारों मील लंबा सफ़र तय करने के बाद भी वापस अपने देश लौट जाता है...माँ भी तो यहाँ पर प्रवासी पंछी ही थी...दो महीने शहर में जैसे-तैसे गुजारे और लौट गई अपने गाँव। शहर की आबोहवा ...भागदौड़ और तेज़ रफ़्तार ज़िंदगी माँ को रास नहीं आई...आख़िर जिद्द करके वह वापस लौट गई...मैं चाह कर भी उसे रोक नहीं पाया।

माँ जितने दिन भी यहाँ रही, बेचैन और उचाट सी ही रही। मानो उसे इच्छा के विरुद्ध यहाँ क़ैद करके रखा गया हो। गुमसुम-ख़ामोश बस अपने में ही खोई हुई। कभी कभार बच्चों से बातचीत कर लेती...वरना माँ का दिल तो अपने खेत-खलिहान, डंगर-ढोरों के बीच भटकता रहता। जैसे उसे ज़बरदस्ती यहाँ रोक कर रखा गया हो। माँ तो गाँव छोड़ कर शहर आना ही नहीं चाहती थी...पर मैं जिद्द करके ले आया था। यहाँ आने से पहले कई बहाने बनाए...ढेरों काम गिनवा दिए...जो उसके बिना नहीं हो सकते थे। मुझे टालने के अंदाज़ में वह बोली थी—भाऊ हियूंद आने वाला है...घासणी में अभी तक दराटी तक नहीं चलाई है...आसपास के लोगों ने घास काट दिया तो डंगर हमारी घासणी बर्बाद कर देंगे।

और बेटा ये मुई भैंस भी तो मेरे हाथ पड़ी है। देसरे के हाथ से तो दूध की फिरश तक नहीं उतारती है। माँ की इस टाल मटोल पूर्ण रामकथा से मैं झुंझला उठा।

—अब बस भी करो माँ। जान है तो जहान है...ज़िंदा रहोगी तभी न कर पाओगी ये सब? तुम्हें मैं शहर घुमाने नहीं ले जा रहा हूँ...ईलाज करवाना है तुम्हारा।

माँ का रसौली का आप्रेशन हुआ। पेट से दो किलो वजन की रसौली निकली...माँ की आँखें भी कमज़ोर थीं...लगे हाथ आँखों पे चश्मा भी लगवा दिया था। डाक्टर ने कुछ दिन आराम करने की सलाह दी थी...इसलिए अस्पताल से सीधे अपने पास ले आया था। कई सालों बाद माँ का सानिध्य मिला था...मानो तपती धूप में पीपल की ठंडी छाँव हो...माँ जितने दिन भी रही, मैंने उसके साथ मानो एक नया जीवन जी लिया था।

बच्चे भी दादी के आने से ख़ुश थे...दादी से कहानी सुनना उन्हें अच्छा लगता था...वैसे भी माँ को क़िस्से और कहानियाँ बहुत याद थी। बचपन में चूल्हे के पास दूध छोलते हुए माँ मुझे भी कहानियाँ सुनाया करती और मैं कथा सुनते-सुनते माँ की गोद में ही सो जाता। मुझे अब भी माँ की सुनाई कहानियाँ याद है। वे मेरे मस्तक पटल पर पत्थर की लकीर की तरह अंकित है। और अब दादी की कहानियाँ बच्चों को लुभाती थी। कई सवाल कहानियों के बीच में उबर आते...माँ उन सवालों के जवाब भी अनोखे ढंग से देती...दादी की कहानियों में बच्चों के लिए रोमांच और जिज्ञासा का एक नया ही अनुभव संसार था...जो जे.के. रोलिंग के जादुई ख़ज़ाने की खोज वाले क़िस्से में भी संभव नहीं था।

मगर स्कूल का होम वर्क करवाने के लिए रश्मि उन्हें वहाँ से दौड़ा देती। माँ को यह सब बुरा नहीं लगता। वह पढ़ाई के महत्त्व को बखूबी जानती थी। उसे स्वयं भी अक्षरों से बहुत प्यार था। जब मैं दूसरी या तीसरी जमात में पढ़ता था, तो पूरी तरह से निरक्षर उस पहाड़ी औरत ने अक्षरों की दुनिया से अपना भी नाता जोड़ लिया था...मेरे लिए वर्णमाला में क से कलम थी...तो माँ के लिए क से कुदाल और द से दवात नहीं बल्कि द से दराती थी। क्योंकि ये औजार ही तो माँ की संघर्षमयी ज़िंदगी के हथियार थे...जिनसे उसने न केवल ढलानदार खेतों की मढ़ों को बांध कर पहाड़ की मिट्टी को पहाड़ में ही रोका था बल्कि हल चलाने योग्य बनाकर अपने ख़ून पसीने से मिट्टी को नम और उर्वरा बनाया था। अपने छोटे से घर की बुनियाद भी माँ ने अपने हाथों कुदाल से मिट्टी खोद कर रखी थी। तभी तो आज तक उस घर की बुनियाद इतनी मजबूत है जो वक़्त के कई जलजलों को झेलने के बावजूद न तो ढहा है और न ही बिखरा है।

मैंने माँ को कभी चैन की नींद सोते हुए नहीं देखा है। मानो माँ का जागते रहना ही इस घर की सुरक्षा की गारंटी थी...जिस दिन माँ सो गई तो न जाने इस घर

का क्या होगा? सुबह पौ फटते ही माँ की दिनचर्या शुरू हो जाती...जो देर रात न जाने कब तक जारी रहती। गाँव की दूसरी औरतों के साथ माँ मुँह अंधेरे ही घास लाने कई मील दूर जंगल की ओर निकल जाती...रूमाल की गाँठ में कभी मक्की की दो रोटी...साग या शाम को बनी भाजी बांधकर...रस्सी दराती लिए गाँव की महिलाओं का यह दल पौ फटने से पहले ही जंगल की ओर निकल जाता। न अंधेरे का डर, न जंगली जानवरों का भय।

जानवर चाहे जंगली हो या वहशी, इन बहादुर पहाड़ी महिलाओं से ख़ौफ़ खाते थे। मगर कभी कभार अकेले सामना होने पर कोई भी उन्हें दबोचने का मौक़ा नहीं चूकता...ऐसे मौक़ों पर वे भी उनसे भिड़ जाती...डटकर मुक़ाबला करती...कभी जीतती तो उनकी बहादुरी की गाथा हर जुबान पर होती। वरना जंगल में एक और हादसा।

जंगल की सरहदों में मिरग और रीछ का भय तो बराबर बना रहता है। मिरग अपने शिकार को गले से दबोच कर सारा ख़ून चट कर जाता है। जंगल में जाने वाली महिलाओं में इस मुद्दे पर भी चर्चा होती रहती...मिरग को शिकार करने के गुर तो बिल्ली ने ही सिखाए हैं...तभी तो बिल्ली मौसी कहलाती है। मगर रीछ और भालू तो आशिक मिजाज जानवर होता है...मर्द पर हमला कर उसकी तो सूरत बिगाड़ देता है...पर औरतों के साथ ऐसा नहीं करता। औरतों के साथ तो वह प्यार करता है...उसे तो वह गुफा में क़ैद करके रखता है। औरत के पैरों के तलवों को चाटकर ज़ख़्मी कर देता है...ताकि वह उसके चंगुल से भाग न निकले।

कभी किसी जमाने में ऐसी ही घास काटने वाली औरत को रीछ जंगल से उठाकर ले गया था...उसे कई महीनों तक एक गुफा में क़ैद रखा...अपनी जनानी बनाकर। वह औरत जब उसकी क़ैद से छूटी तो वह पेट से थी। बाद में उसने रीछ के बच्चे को जन्म दिया, जो कुछ दिनों के बाद मर गया था। बचपन में कभी माँ के साथ जंगल में जाती बार ही गाँव की चाचियों और ताईयों के मुँह से ऐसे किस्से सुन रखे थे। मगर पहाड़ की इन औरतों की ज़िंदगी में संघर्ष और जोखिम के सिवाय और कुछ नहीं है।

मुझे वह दिन आज भी याद है। पड़ोस की शांता ताई उस रोज़ माँ के साथ जंगल में घास लाने गई थी...गर्मियों के दिन थे। देवीधार के जंगल में दूर-दूर तक हरियाली का नामोनिशान नहीं था। जेठ महीने की रूड़ तपी हुई थी...ज़मीन पर हरी घास का तिनका नहीं मिल रहा था। माँ और ताई दोनों झाड़ियों के बीच से तिनका-तिनका हरी घास निकाल रही थी...जैसे-तैसे करके दोनों ने घास के गट्ठर बांध लिए...इतने में ताई की नज़र सामने ढांक पर मुलायम हरी घास पर पड़ी तो वह

अपने आपको रोक नहीं पाई। वह दराती लेकर उस दिशा में बढ़ी तो माँ ने ताई को रोका भी था।

—रहने दे बोबो जगह घाटी है...उस ओर मत जा। पर ताई नहीं मानी।

—आज ही थोड़े आई हूँ जंगल में...लकड़ी-घास ढोते हुए सिर भी पत्थर हो गया है...ये सामने ही तो है घास...ते बैठ मैं अभी आई। ताई ने घास तो सावधानी पूर्वक निकाल लिया था। मगर जैसे ही वापस आने को पलटी तो अचानक पाँव फिसला और नीचे गहरी ढांक में जा गिरी। माँ ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उस वीरान जंगल में माँ को अपने ही रोने की आवाज़ गहरी घाटी से वापस लौटती सुनाई देने लगी। वह जी भर कर रोई और फिर घास का गट्ठर उठाकर अकेले ही दौड़ती हुई घर वापस लौटी थी।

ताई के अपनी आँख के सामने ढांक से गिरने की बात रोते हुए सबको सुनाई...एक बार नहीं कई बार जब भी कोई पछतावा देने आता तो माँ रोते हुए कहती—मैं कहती रही बोबो मत जा ढीग है पर वो नहीं मानी...और नीचे ढांक में जा गिरी। माँ को सांत्वना देने वाले कहते—होनी को कौन टाल सकता है! उसकी मौत ऐसी लिखी थी...परमात्मा के आगे किसका बस चलता है।

ताई की मौत के बाद माँ कई दिनों तक उदास रही। उसने जंगल जाना ही छोड़ दिया था...कुछ दिनों तक गाँव की औरतें भी जंगल में घास लेने नहीं आई। मगर दूध देने वाली भैंस और गायों का पेट भरने के लिए उन्हें फिर से जंगल की ख़तरनाक पगडंडी पर वापस लौटना पड़ा। अब ज़िंदगी को ठहराव तो दिया नहीं जा सकता है...दुःख-सुख ज़िंदगी का हिस्सा है...पहाड़ की औरतों के हिस्से में संघर्ष और दुःख ही तो हैं...चाहे वो माँ हो या कोई और।

माँ सुंदर तो थी ही...मेहनती और संवेदनशील भी थी। पहाड़ की हर उस औरत की तरह जो सुबह से शाम तक इन पहाड़ों से जूझती रहती है। माँ का चाँद सा सुंदर चेहरा उस समय और भी दमक उठता जब वह जंगल से घास-लकड़ी का बोझ पीठ पर उठाकर लौटती। पसीने की बूंदें माँ के चेहरे पर ऐसी लगती मानो गुलाब के फूल पर ओस की बूंदे चमक रही हों। बरामदे में आराम करने बैठी माँ की गोद में दुबकना मेरे लिए अलौकिक सुख का अहसास होता और ममतावश माँ के खुरदरे हाथ मेरे गालों को सहलाने लगते...जिसमें सारे जहाँ का सुख सिमट जाता।

मगर पिता इसके विपरीत थे। पिता का रूखापन मुझे कभी रास नहीं आया। शायद पिता ऐसे ही होते हैं? कभी प्यार नहीं करते हैं...बात-बात पर डाँटना-डपटना...गालियाँ देना उनकी आदत थी। और मर्दानगी दिखाने के लिए घर के किसी भी सदस्य पर हाथ उठाने का मानो उनका एकाधिकार था जिसे कोई चुनौती

नहीं दे सकता था...यहाँ तक कि माँ भी उनके आगे बेबस थी। शायद गाँव के हर घर की यही कहानी थी। मर्द लोग दिन भर गप्पें मारते...शेखचिल्ली की तरह ख्वाब बुनते...राजनीति की बातें करते...गाँव के चौराहे पर ताश खेलते...शाम ढले शराब के नशे में धुत जब घर को लौटते तो पता चलता...कि घर का मालिक आ गया है।

घर कैसे चलता है उन्हें नहीं मालूम...चूल्हे की आग कैसे जलती है उन्हें इससे कोई सरोकार नहीं...फिर भी वे घर के मालिक हैं...निक्कमें और उदंड। औरतों ने ढंग से खाना नहीं परोसा, तो समझो थाली आँगन में पहुँच गई...रात भर गाली गलौच होता अलग। पिता के घर में रहते भांडे, बर्तन तो ठणकते ही रहते। माँ इस सब की आदी हो गई थी।

...और मैं पिता के हिस्से का प्यार भी माँ के आँचल की छाया में समेटना चाहता था...मुझसे छोटे दो भाई और एक बहन थी...मगर मैं माँ के बहुत क़रीब था...और माँ के संघर्ष का साक्षी भी। पिता को शराब से फ़ुर्सत मिले तो घर की सुध ले...खेती करसाणी...डंगर-पशु सारे काम माँ के हवाले। औरत होने की त्रासदी को माँ ने ही नहीं गाँव की सभी औरतों ने झेला है अपने ख़ून-पसीने से बया की तरह तिनका-तिनका जोड़ घरौंदा बनाने वाली माँ को पिता प्रताड़ित करने को कोई भी मौक़ा नहीं चूकते...उनके लिए औरत पैर की जुती से बढ़कर कुछ नहीं थी।

माँ के साथ जुड़ी यादों का सिलसिला थमता नहीं। उस समय मैं नौवीं कक्षा का विद्यार्थी था...मेरी एक कविता स्थानीय अख़बार में छपी थी...अख़बार में अपना नाम देख मेरे पाँव ज़मीन पर नहीं लग रहे थे। उस वक़्त मुझे लगा कि दुनिया का सबसे बड़ा आदमी तो मैं ही हूँ। ख़ुशी के आलम घर पहुँचा तो अख़बार माँ को दिखाई...उसकी ख़ुशी का भी ठिकाना नहीं रहा। माँ डंगरे चराने जब जंगल में गई तो अख़बार भी साथ ले गई। अक्षरों को जोड़-जोड़ कर दिन भर न जाने कितनी बार माँ ने उस कविता को पढ़ा होगा...घर आई तो उसे सँभाल कर अपने संदूक़ में रख दिया था। मानो कोई बहुत बड़ी अमानत हो।

इस बार जब मैंने अपनी नई किताब माँ के हाथों में रखी तो वर्षों पुरानी वही चमक उसकी आँखों में लौट आई थी...किताब के पन्ने पलटती रही और शब्दों को जोड़-जोड़ कर उनके अर्थ जानने का प्रयास भी करती रही। और जाती बार किताब को माँ अपने साथ ले गई...बोली, तेरे पिता को दिखाऊँगी इसे। पर, यह बात तो माँ भी जानती थी ...पिता के लिए इसके कोई मायने नहीं हैं। हाँ ...इसके बदले अगर दारू की बोतल भेज देता...तो वे गाँव भर में मेरी प्रशंसा करते फिरते। मेरे बेटे को मेरा कितना ख़याल है...अपनी माँ के हाथ खास मेरे लिए फलाँ ब्रांड की शराब भेजी

है। मगर जाने क्यों माँ...पिता को यह अहसास दिलाना चाहती थी...कि जिस बेटे को वे पढ़ाना नहीं चाहते थे आज उसी की लिखी किताबें लोग पढ़ते हैं।

माँ ने गाय-भैंस पालकर हम सब भाइयों और बहन को पढ़ाया। दूध बेचकर माँ हमारे स्कूल का खर्चा चलाती थी।

एक बार की बात है...हर रोज़ की तरह माँ भैंस के लिए घास लाने जंगल गई थी। पीछे से पिता ने भैंस बेच दी। माँ थकी हारी जब जंगल से घर वापस लौटी तो गवायण में भैंस न देख मुझसे माँ ने पूछा—बेटा, सुरेश वो भैंस कहाँ गई ?

—पिता ने बेच दी है। ...मेरा जवाब सुनकर चौंक उठी।

—क्या ? माँ को जैसे मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था—क्या कह रहा है तू...उसे क्यों बेच दिया...उससे ही तो घर और तेरी पढ़ाई का ख़र्च चलता था। तेरे पिता ने उसे क्यों बेच दिय? कितने में बेची...पैसे कहाँ डाले। माँ के इन सब सवालों का मेरे पास कोई जवाब नहीं था। मगर इन सवालों ने माँ को बुरी तरह से बेचैन कर दिया था...माँ की हालत देख मैं इस बात को बखूबी महसूस कर रहा था।

उस रोज़ पिता दिन भर घर से ग़ायब रहे...शाम को लौटे तो नशे में धुत थे। माँ ने भैंस बेचने के बारे में पूछा तो उल्टा बरस पड़े—तू कौन होती है मुझे पूछने वाली...मैं इस घर का मालिक हूँ...मेरी मर्जी ! मेरा जो जी चाहे वो करूँगा। तेरे बाप ने लाकर नहीं दी थी वो...मेरे खुंडे की भैंस थी मैंने बेच दी।

अब माँ को भी गुस्सा आ गया—बड्डा आया घर का मालिक...जी-तोड़ मेहनत कर बच्चों की पढ़ाई का खर्चा चला रही हूँ...तुझे तो इसकी कोई फिक्र नहीं है। ख़ुद तो कुछ काम-धाम करना नहीं...पर हमें भी चैन से जीने नहीं देता। माँ फफक पड़ी थी। उसके अंदर का आवेश आँखों के रास्ते बाहर उमड़ पड़ा था। पर नशे में चूर पिता को इसकी क्या परवाह थी। उनके लिए तो घर की सारी जिम्मेदारी बस माँ की ही थी। वो चाहे कैसे भी इस घर गृहस्थी के बोझ को ढोती रहे। गाँव के हर घर की लगभग यही कहानी थी...खेती-बाड़ी, डंगर-पशुओं की देखभाल से लेकर बच्चों के पालन-पोषण का जिम्मा औरतों के सर पर...और मर्द तो बस मर्द हैं...दिन भर ताश खेलना...पंचायत से लेकर देश की राजनीति पर तफशरे करना...पार्टियों के नाम पर बँटे लोग कभी आपस में लड़ पड़ते और शाम ढले ठेके से दारू की बोतल चढ़ाकर घर में कोहराम मचाते...बड़ा हुआ तो कुछ दिन के लिए गाँव के देवता के साथ मेहमानचारी में निकल पड़ते।

माँ ने जैसे-तैसे हमें अपने पैरों पर खड़ा होने लायक़ बनाया था। अब तो सबकी घर गृहस्थी बस गई थी। माँ से कई बार कहा था—अब आराम करने के दिन हैं...सारी उम्र काम ही तो किया है...बहुएँ आ गई हैं...उन्हें भी तो काम करने दिया

करो। पर माँ नहीं मानती। मुझे झिड़क देती—बड़ा आया तू मुझे काम करने से रोकने वाला...बेटा जब तक शरीर में प्राण हैं मैं तो काम करती रहूँगी। जब नहीं हो पाएगा तब बहुएँ ही करेंगी मेरी सेवा। माँ उस नदी की तरह थी जो निरंतर प्रवाह मान रहती है...दिन हो या रात...सर्दी हो या बरसात...नदी कभी थमी नहीं...उसके बहते रहने से ही धरती में जीवन...खेतों में हरियाली...और पर्यावारण का संतुलन बना रहता है। माँ के होने से ही हमारे घर का संतुलन बना था।

और एक दिन माँ का हश्र भी वही हुआ...जो पहाड़ की हर तीसरी औरत का होता है...जंगल में घास काटते हुए पेड़ से गिर गई और रीढ़ की हड्डी टूट गई। बेहोशी की हालत में किसी महिला ने देखा था...उसके शोर मचाने पर आसपास के गाँव वाले उठाकर लाए थे...पर घर तक भी नहीं पहुँच पाई, रास्ते में ही दम तोड़ दिया। दूसरे दिन घर पहुँचा तो माँ का अंतिम संस्कार हो चुका था। माँ के बिना अब घर ख़ाली-ख़ाली सा लग रहा था...फिर भी लगता माँ यहीं कहीं है...वह मरी नहीं है...अभी आएगी और कहेगी—भाऊ तू आ गया...बहु और बच्चों को नहीं लाया...तू ठीक तो है न...समय पर खाना भी खाता है कि खोया रहता है किताबों में। ऐसे कई सवाल पूछा करती थी माँ। शायद अब भी पूछेगी।

माँ के सारे कार्य पूरे हो चुके थे। अब मुझे वापस शहर लौटना था...पिता ने माँ के संदूक़ की चाबी सबके सामने मेरे हाथ में रख दी—तेरी माँ के संदूक़ की चाबी है...तू उसका लाड़ला था...तू ही उसे खोल और जो भी सामान हो उसे तीनों भाई आपस में बाँट लो। पिता की बात सुन दोनों भाभियों की आँखों में चमक आ गई...मानो माँ कोई बड़ा ख़ज़ाना अपने पीछे छोड़कर गई थी जो आज उन्हें मिलने वाला था। अनमना सा मैं कमरे में जाकर संदूक का ताला खोलता हूँ...उसमें माँ के कुछ अनसिये कपड़े, शॉल...एक डिब्बे में चांदी के कड़े...दादी के समय के गहने और भी कुछ जिस ओर मैंने ध्यान नहीं दिया...संदूक के तल में एक कोने पर कपड़े से लिपटा कुछ था...जिसे बाहर निकाल कर देखा तो किताब पर माँ का चश्मा था। उसे मैंने उठा लिया...ऐसा लगा कि माँ के चेहरे को स्पर्श कर रहा हूँ। मैंने झट से कहा...मुझे तो बस यही चाहिए...मैं इसे पहनूँगा नहीं...अपने पास रखूँगा...उससे मुझे यह अहसास तो रहेगा कि माँ की नज़र आज भी मुझ पर है।

पर्वत राग, 2008

छिदरा

साँझ ढल रही तुलजे राम दुकान के फट्टे चढ़ा रहा था। उसे घर पहुँचने की जल्दी थी। शाम का अंधेरा घाटी में पसर रहा था। आसमान में घिर आई घटाओं से यह और भी स्याह हो गया था। साँय-साँय करती डरावनी हवा की पीठ पर सवार आवारा बादल धार की दूसरी ओर निकल जाते। तेज़ हवा के वेग से हिलते देवदार, बान, बुरांस, कैल और तोस के पेड़ों से डरावनी सी आवाज़ें निकल रही थीं। मानो किसी हॉरर फ़िल्म का दृश्य चल रहा हो...कोई और होता तो शायद इस डरावने शोर को सुन कर डर जाता...मगर तुलजे राम इसका अभ्यस्त था। दो घाटियों के बीच स्थित इस गल्ले पर सुबह शाम ऐसी ही डरावनी हवाएँ चलती हैं।

दुकान का आख़िरी फट्टा चढ़ा कर तुलजे राम ने कुंडे पर ताला जड़ दिया। तस्सली के लिए ताले को एक बार खिंच कर देखा और घर की ओर चल दिया। तुलजे राम की दुकान यहाँ से गुज़रने वालों के लिए पड़ाव थी...गाँव वालों का राशन और कपड़ा-लत्ता भी इसी दुकान से जाता...तुलजे राम की दुकान में गाँव वालों की ज़रूरत का हर सामान मौजूद रहता! वो भी इलाक़े की दूसरी दुकानों से कहीं सस्ते दामों पर।

वैसे तो तुलजे राम का घर दुकान से एक-डेढ फर्लांग की दूरी पर था। मगर ख़राब मौसम, उबड़-खाबड़ रास्ते इस सफ़र को कठिन बना देते! गाँव का एकमात्र रास्ता वो भी ठीक नहीं। हालाँकि, काग़ज़ों में रास्ता पक्का हो चुका है। प्रधान के लड़के ने इसका ठेका लिया था, बाप का राज था...सीमेंट की जगह रेत ही बिछा दी। बरसात की पहली बारिश बहा कर ले गई। जैसे पहले यहाँ पर एक भी तगारी मसारी न डाला हो। इसके बाद फिर किसी ने भी इस रास्ते की सुध नहीं ली।

जब से तुलजे राम ने धारगलू में दुकान डाली है अक्सर अंधेरे में इस उबड़-खाबड़ रास्ते पर वह कई बार गिरा-पड़ा है...अब तो वह इस रास्ते का आदि हो गया है...कहते हैं धर की ओर जाने वाले रस्ते पर आदमी आँख मूँद कर भी चले उसे पता रहता है कि कौन सा क़दम कहाँ रखना है। मानो रास्ते को क़दमों से नाप रखा हो।

अभी तुलजे राम घर के क़रीब नहीं पहुँचा था कि तेज़ हवा के साथ बारिश शुरू हो गई। सामने की पहाड़ी पर बादलों के बीच बिजली का लश्कारा हुआ जिसकी चमक से उसे रास्ता साफ़ दिखाई दिया, मगर तभी ज़ोरदार धमाका हुआ। जंगल में कहीं पर बिजली गिरी थी...तुलजे राम ने दौड़ते-भागते हुए घर तक की दूरी तय की।

उस रात मानो क़यामत आ गई थी। पानी ऐसे बरसा मानो बादलों का घड़ा फट गया हो। घोर गर्जना के साथ आसमान में बिजली ऐसे चमकती मानो अंधेरे कमरे में कैमरे की लाइट पड़ी हो। ज़ोरदार कड़ाके के साथ बिजली गिरने का धमाका होता...जिससे तुलजे राम क्या पूरे गाँव की नींद उड़ जाती। गाँव के बड़े-बूढ़े हुक्का गुड़गुड़ाते हुए सोच रहे थे...गाँव के किसी घर पर बीज गिरी तो अनर्थ हो जाएगा...अब इस आपदा से देवता ही रक्षा करे।

आधी रात को गाँव के बीच भारी गर्जना के साथ लपलपाती कोई चीज गिरी...धमाके से गाँव के काठकुणी शैली के पहाड़ी मकान झन्नझन्ना उठे। सारे गाँव में कोहराम मच गया...बीज गिरी है...बीज! गाँव वाले आसमानी बिजली के गिरने को बीज गिरना ही कहते हैं।

देवता के मंदिर के पास खड़ा ध्वज टूट गया था। ध्वज का टूटना गाँव के लिए अपशकुन था। तुलजे राम ने घर के चौबारे से बाहर झाँक कर देखा...देवता के मंदिर के साथ खड़ा देवदार का पच्चीस-तीस फुट ऊँचा खंबानुमा ध्वज टूट कर धरती पर बिखर गया था। देवता का ध्वज टूटना कोई मामूली बात नहीं थी...यह अपने आपमें गंभीर मसला था।

—इस तरह अचानक ध्वज का टूटना अच्छा नहीं है...देवता के भंडार में मौजूद कारिंदे इस बात से चिंतित थे। देवता का कारदार बुधेराम हुक्के की गुड़गुड़ के साथ लंबे कश खिंचता और नाक व मुँह से धुएँ का ऐसा गुब्बार छोड़ता मानो चिमनी का मुँह खुल गया हो। पासा फेंक रहे भंडारी नीलमणी से बोला—देओ के जेठे मोहरे से लगा और फिर फेंक पासा...शायद कोई तो जवाब मिले। भंडारी ने कारदार के कहे अनुसार पासे को देवता के मोहरे के पास ले जाकर मन ही मन प्रार्थना की और मुट्ठी खोल कर पासा ज़मीन पर गिरा दिया। ...इस बार भी चाल उलटी ही पड़ी...सबके चेहरे अंजानी आशंका से सिकुड़ गए।

बीती रात के अंधड़ से गाँव में काफ़ी नुकसान हुआ था। मगर इसकी चिंता किसी को नहीं थी...चिंता थी तो बस देवता के ध्वज टूटने की। यह कोई मामूली ध्वज नहीं था बल्कि देवता की शक्ति का प्रतीक था। इसके खड़े रहने से ही तो देवता की सत्ता कायम थी! अब यह गिर गया है तो देवता भी शक्तिविहीन हो गया है।

बुधे राम कारदार थोड़ा चिंतित स्वर में बोला—पचास साल पहले गाड़ा गया

था यह ध्वज...इसके लिए खास विधि-विधान करना पड़ता है। उसकी बात का समर्थन करते हुए भंडारी नीलमणी ने कहा—जब तक यह ध्वज खड़ा था। गाँव के सबलोगों पर देवता की शक्ति का साया था...अब वह साया उठ गया है। लोहे के साँकल को देवता के रथ की ओर सरकाते हुए जालपू गूर ने कहा—सुबह से धंग्यारे में धूप जला रहा हूँ पर मुझे खेल नहीं आ रही है...देवता कोई जवाब नहीं दे रहा है...देओ भी मानो गूँगा हो गया है।

सबके मन में अब यही आशंका है कि अब इस गाँव का कोई बेलीबारस नहीं रहा...देवता भी लगता है शक्तिविहीन हो गया है। देव विमर्श में लगे सभी कारिंदे चिंतित थे...शक्ति के बिना तो यह काठ का गुड्डा ही रह जाएगा। भंडारी नीलमणी ने वहाँ व्याप्त सन्नाटे को तोड़ते हुए कहा—इसका कुछ तो परिहार होगा जिससे देवता का शत वापस लौट आए?

—हाँ एक उपाय है। कारदार बुधे राम ने कहा—इस गिरे हुए ध्वज की जगह पर दूसरा ध्वज गाड़ना पड़ेगा।

—इसमें कौन सी बड़ी बात है। तुलजे राम बीच में बोल पड़ा—सब लोग चलो जंगल से देवदार का बड़ा सा पेड़ काट कर ले आते हैं...गाड़ दो देवता के नाम का ध्वज और बना दो सर्वशक्तिमान। उसकी इस बात में सलाह कम व्यंग्य अधिक था—तू तो पढ़ा लिखा मूर्ख है तुलजे राम। अब तक खामोश बैठे कठियाला नीमे राम ने गुस्से में कहा—यह कोई मखौल की बात नहीं है...गाँव पर संकट आया है इसका निवारण करना ज़रूरी है। तुझे पता है देवता के बिना हमारी कोई पहचान नहीं है। मगर तुलजे राम तो मानो उनका मज़ाक़ उड़ाने के मूड में था। हंसता हुआ वह बोला—तू ठीक कहता है कठ्याला चाचू ...देवता के बिना आप लोगों की पूछ नहीं होगी...ये जो सारा तंत्र देवता के नाम पर रचा गया है...वो देवता की शक्ति न रहने पर कैसे रच पाओगे तुम लोग?

—ओये तुलजेया...क्या बक रहा है तू? अबकी बार कारदार बुधे राम को गुस्सा आ गया था—हम सच्चे मन से देवता की चाकरी करते हैं...यह कोई तंत्र नहीं परंपरा है देव समाज की परंपरा जो सदियों से इन पहाड़ों में चली आ रही है...हम सब उन्हें ही निभाते हैं। मगर तुलजे राम उनकी दलीलों को अपने तर्क से काटने का प्रयास कर रहा था—देव परंपरा...कौन सी देव परंपरा की बात करते हैं आप लोग? देवता को देवता कब रहने दिया है आप लोगों ने? तुलजे राम ने गुस्से में कहा—आपने तो देव परंपराओं के नाम पर भोले-भाले लोगों की आस्था का मज़ाक़ उड़ाया है...परंपराओं को रूढ़ियाँ बना दिया और अंधविश्वास को बढ़ावा दिया है...दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई है और आप लोग...यहीं पर अटके हुए हैं।

गूर ने आवेश में आते हुए कहा—देख तुलजे राम अब इससे आगे और कुछ मत कहना...ये परंपराएँ कोई आज की नहीं बनी है...पूरा समाज जुड़ा है इनसे। उसकी बात का सभी ने समर्थन किया—समाज में रहना है तो उसके कायदे और नियम के अनुसार ढलना पड़ता है...यहाँ एक आदमी की मर्जी नहीं चलेगी।

देवता के कारिंदों और तुलजे राम के बीच तर्क-वितर्क देर तक चलता रहा। तुलजे राम चाहता था कि इस प्राकृतिक आपदा से जो नुकसान हुआ है...उसके बारे में बातचीत कर एक दूसरे की मदद की जाए। मगर यहाँ तो बात बिजली के खंबे की तरह लंबे ध्वज पर आकर अटक गई है। उसे भी तो इन्हीं लोगों के बीच रहना है...उसकी दुकान भी तो गाँव वालों के सिर पर ही चल रही थी। उस समय तो वह चुप हो गया, पर मन ही मन उसने उन लोगों को सबक़ सिखाने का इरादा कर लिया था...बस इसके लिए वह सही समय समय और मौक़े के इंतज़ार में था। माहौल को सामान्य करने की गरज से युवक मंडल के प्रधान हरदेव ने कहा—अच्छा यह तो बताओ अब आगे क्या करना है? इस समस्या का कोई तो समाधान होगा।

—अब काहिका ही आख़िरी समाधान है...अपने पापों के प्रायश्चित के लिए सबको छिदरा करवानी होगी...इसके बिना देवता की शक्ति लौट नहीं सकती है। कारदार बुधे राम ने निर्णायक स्वर में अपना फ़ैसला सुनाया।

—काहिका ...छिदरा? एक साथ सबके मुँह से निकला।

—हाँ...काहिका। कारदार ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा—नड़ को बुलाकर सारी कारी करनी पड़ेगी...ध्वज गाड़ने के अलावा सब लोगों को छिदरा करवानी पड़ेगी...पचास साल पहले भी ऐसा ही हुआ था...तब मैं छोटा सा था। कारदार जैसे स्मृतियों में खो सा गया—चार दिन तक चलेगा कारज...बाहर से आने वाला हर आदमी गाँव का मेहमान होगा...उसके खाने-पीने की व्यवस्था देवता की ओर से होगी।

—तब तो राशन भी बुहत लगेगा। तुलजे राम ने उत्सुकता से पूछा।

—हाँ...आटे-चावल की कई बोरियाँ लग जाएँगी...तू अभी से इंतजाम कर ले, सारा सामान तेरी ही दुकान से आएगा। कठयाले ने कहा—पर एक बात का ध्यान रखना कि देव कारज में विघ्न मत डालना।

—जब आप सब लोग सहमत हैं तो मुझे क्या पड़ी है। तुलजे राम ने काहिका उत्सव के लिए अपनी रजामंदी देते हुए कहा—कितना राशन चाहिए समय पर बता देना...मुझे भी बाज़ार से गाड़ी में सामान लाना पड़ेगा।

देवता को शक्ति संपन्न करने वाले इस उत्सव की तैयारी में गाँव का हर आदमी जुट गया था...आस्था के सवाल पर कोई भी पीछे हटने वाला नहीं था। सबसे पहले

पैसों का जुगाड़ करना था...महँगाई का जमाना है लाखों लगेंगे, मगर लोगों ने देवता के नाम पर दिल खोलकर दिया। दूसरी हारी के लोग भी इस पुनित कार्य में पीछे नहीं रहना चाहते थे। हर गाँव से देवता के कारज के लिए अंशदान आना शुरू हो गया था।

तुलजे राम हैरान था। ये लोग अचानक इतने दानवीर कैसे हो गए? कल तक जो लोग स्कूल और रास्ते के नाम पर जेब से दमड़ी निकालने को राजी नहीं थे। आज बढ़चढ़ कर दान दे रहे हैं। उसे याद है कि स्कूल के टूटे छप्पर को ठीक करवाने के लिए वह लोगों के घर-घर गया था, मगर किसी ने भी फूटी कौड़ी नहीं दी। उल्टे लोगों की अनेक बातें सुननी पड़ी थी—सरकार क्या मर गई है? स्कूल का छप्पर भी लोगों को ही बनाना पड़े तो खोल क्यों रखे हैं स्कूल? मगर देवता के नाम पर तो चंदा देने वालों की होड़ लग गई थी। पंद्रह दिन में ही ढाई लाख रुपए जमा हो गए थे। देवता के भंडार में यह हिसाब लगाया जा रहा था—अभी और पैसों की ज़रूरत है। भंडारी ने हिसाब लगाते हुए कहा—जिस तरह से महँगाई बढ़ी है...उस लिहाज से तो पाँच लाख के क़रीब ख़र्चा होगा। और पैसे कहाँ से आएँगे यह सोचने की बात है।

—इसके लिए एक तरकीब है मेरे पास...अगर आप सब लोग राजी हों तो। खीमे राम जो स्थानीय विधायक का इलाक़े में ख़ास आदमी माना जाता था, वह बीच में बोल पड़ा। वह इलाक़े में विधायक का नाक और कान था। इलाक़े की हर ख़बर वह विधायक तक पहुँचाता था...इलाक़े के दौरे से पहले ही वह हर ख़ुशी और गमी की सूचना विधायक तक पहुँचा देता था...किसके घर बूढ़े की मौत हो गई...किसकी घरवाली अपने यार के साथ भाग गई...और इलाक़े में प्राकृतिक आपदा से किसका कितना नुकसान हुआ है इस सबकी जानकारी विधायक तक पहुँचाने वाला वही था। देवता के काहिके की ख़बर भी उसने विधायक तक पहुँचा दी थी।

—हाँ...हाँ कहो खीमे राम क्या बात है। सबने अपनी सहमती दे दी।

खीमे राम ने भूमिका बांधते हुए कहा—देवता की कृपा से पैसा तो और भी आ जाएगा...पर मेरा सुझाव है कि देवता की सराय के लिए जो दो लाख रुपये की घोषणा ठाकर साहब ने की है, वह पैसा ब्लॉक में आ गया है...क्यों न उस पैसे को भी इसमें लगा दिया जाए? सराय तो लोगों ने बना दी है...बस इसको थोड़ा रंग रोगन कर देंगे और ठाकर साहब से उद्घाटन भी करवा देंगे।

उसकी बात पर सब लोग एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। युवक मंडल के प्रधान हरदेव ने कहा—सुझाव तो ठीक है, पर सरकारी पैसे इस तरह कैसे ख़र्च कर सकते?

—वो सब तुम मेरे पर छोड़ दो...मैंने इस बारे में ठाकर साहब से बात कर ली है...उन्होंने बीडीओ को सारी बात समझा दी है...बस काहिका वाले दिन सराय का उद्घाटन करवाना होगा। लोग यह जानते थे कि विधायक का मुँहलगा होने की वजह

से खीमे राम के लिए इस तरह के काम करवाना कोई बड़ी बात नहीं है।

आख़िर काहिका उत्सव का दिन भी आ गया। लोगों में उत्सुकता और रोमांच का मिला जुला भाव था। नड़ मरेगा...उसकी शव यात्रा निकाली जाएगी...देवता की अग्नि परीक्षा होगी...अगर नड़ ज़िंदा हो गया तो समझो देवता की शक्ति वापस लौट आई...फिर कोई भी बुरी आत्मा गाँव क्या इलाक़े में प्रवेश नहीं कर पाएगी...देवता की सत्ता दोबारा कायम हो जाएगी...अगले कई सालों के लिए। देवगढ़ पिछले कुछ दिनों से चर्चा में था...दूर-दूर से लोग बिन बुलाए काहिका उत्सव देखने यहाँ आने लगे थे। सबके भोजन का इंतज़ाम देवता की ओर से था। देवता के नए और पुराने भंडार के प्रांगण में खाना-खाने वालों की क़तारें लगी थीं...ऊँची जाति वालों के लिए अलग और निचली जाति वालों के लिए अलग इंतजाम था। सारी व्यवस्था लोगों ने सँभाल रखी थी। किसी को भी कुछ कहने की ज़रूरत नहीं थी।

देवता के कारिंदे काहिका उत्सव के प्रमुख किरदार नड़ दलेर सिंह के घर औपचारिक निमंत्रण देने पहुँचे। वे अपने ढोल नगाड़ों के साथ बजंतरियों को भी ले आए थे। पहले तो उसने अश्लील गालियाँ बकते हुए उनका निमंत्रण ठुकरा दिया...मगर काफ़ी मानमुनौवल के बाद वह उनके साथ चलने को राजी हुआ। मानो वह उन पर एहसान करने जा रहा हो। ढोल नगाड़ों का शोर थमने पर लोगों को उसकी अश्लील गालियाँ सुनाई पड़ती...उसका अनुसरण उसकी पत्नी नड़न और अन्य सहायक नड़ भी कर रहे थे। गालियाँ भी ऐसी नॉनवैज जिनका स्तर बाजारू गालियों से निम्न था...जिन्हें न तो दोस्त हँसी-मज़ाक़ में भी कभी दोहरा सकते थे और दुश्मन...दुश्मन भी ऐसी अश्लील शब्दावली से परहेज करे। किसी ने बताया कि नड़ के मुँह से अश्लील गालियाँ सुनना शुभ होता है...और अगर आपने काहिका के दौरान छिदरा करवाली तो आपके सारे पाप धुल जाएँगे। खीमें राम शहर से आए एक बुद्धिजीवी को समझा रहा था—आपने चाहे गलती से ही सही अगर गाय की हत्या कर दी है...तो उसका प्रायश्चित भी छिदरा करवाने से ही होगा।

—अच्छा। वह हैरानी और उत्सुकतावश यह सब अपनी डायरी में नोट करता जा रहा था—आज के साइबर युग में भी ऐसी लोक परंपराएँ...कमाल है, इन पर तो रिसर्च होनी चाहिए...आख़िर इसके पीछे क्या रहस्य हैं?

देवदार के चार पौधों को गाड़कर काहिका वेदी तैयार कर दी गई थी। अपने-अपने पापों का प्रायश्चित करने वाले छिदरा करवाने बारी-बारी वहाँ आने लगे थे। नड़ दलेर सिंह और उसके साथी मंत्र की जगह पर अश्लील गालियों का उच्चारण ज़ोर-ज़ोर से कर रहे थे। वे सब नशे में धुत्त थे...शायद होशोहवास में आदमी इतने लोगों की भीड़ में इस तरह की अश्लील गालियाँ देने की हिम्मत नहीं कर पाता...तुलजे

राम जो उनकी सेवा टहल के लिए तैनात था बड़े क़रीब से यह सब देख रहा था।

नड़ दलेर सिंह छिदरा करवाने वाले से कहता—आज तक जो भी पाप किए हैं उनको याद करो...और मेरे साथ बोलो...छिदरा...छिदरा...छिदरा!

—अगर गलती से गऊ हत्या की है तो उसकी ...छिदरा!

प्रत्युतर में दूसरा आदमी कहता जाता—छिदरा!

दलेर सिंह—दूसरे की जनानी से मुँहकाला किया उसकी भी...

—छिदरा!

दलेर सिंह—किसी की हत्या कर दी और पकड़ा नहीं गया...उसकी भी छिदरा...नाते रिश्तेदारी में अवैध संबंध बनाए उसकी भी ...छिदरा...छिदरा...छिदरा! हाथ में लिए काष्ठलिंग को उसके सिर पर रख कर मानो आशीर्वाद देता है।

और मंडप के बाहर का नजारा कुछ और ही था। मंदिर के सामने की ढलान दार जगह पर हज़ारों महिलाएँ और पुरुष काहिका उत्सव का रोमांच और अपनी-अपनी गलतियों का प्रायश्चित करने के उद्देश्य से जमा थे। उनमें जवान लड़कियाँ...औरतें बच्चे और बूढ़े सब शामिल थे।

नड़ की ख़ूबसूरत और जवान औरत बिमला इस वक़्त नशे में टुन थी। वह महिलाओं और पुरुषों के बीच जा-जा कर नड़खण यानी छिदरा करवा रही थी। हाथ में लिए काष्ठ लिंग से वह अश्लील हरकतें कर रही थी...उससे पिंड छुड़ाने के लिए लोग पाँच-दस रुपए उसके हाथ में रख छिदरा करवा कर खिसक लेते। उसकी हरकतों का वहाँ मौजूद भीड़ मज़ा ले रही थी...नशे की रौ में वह किसी को पकड़ कर बाँहों में जकड़ लेती...कुछ मनचले उसके गदराये यौवन के मोहपाश में बंधे...छिदरा करवाने के बहाने उसके पास जाते रहते।

यह सब देखकर तुलजे राम के तन-बदन में आग लग रही थी। इस भीड़ में उसे ऐसा कोई दिखाई नहीं दिया जो इस अश्लील कृत्य का विरोध कर सके।

—आस्था और परंपरा के नाम पर अंधविश्वास और फूहड़पन का यह नंगा नाच कैसा? तुलजे राम झुंझलाहट में अपने आपसे कहता है—ऐसे में तो इसे रोका नहीं जा सकता है...मगर कुछ तो करना ही पड़ेगा। अभी वह कुछ सोच ही रहा था कि उसकी नज़र महिला मंडल की प्रधान सरला पर पड़ी। वह समझदार और जागरूक महिला थी। तुलजे राम के साथ उसकी बनती थी। तुलजे राम ने उसे इशारे से पास बुलाया और किनारे ले जाकर कहा—ये जो सामने हो रहा है क्या यह ठीक है, सरला?

—नहीं, बुरा तो मुझे भी लग रहा है...पर किया क्या जा सकता है? जवान लड़कियों और माँ बहिनों के सामने एक औरत की ऐसी हरकतें और गंदी गालियाँ देना ठीक नहीं है...पर हम कर भी क्या सकते हैं...आख़िर देवता की बात है...कोई भी

हमारा साथ देने को राजी नहीं होगा। सरला ने विवशता जताते हुए कहा।

—कुछ तो करना ही पड़ेगा...आख़िर छिदरा और देवता के नाम पर यह उन्माद, फूहड़पन और आदिम सभ्यता का खेल चलता रहेगा? किसी को तो इसे रोकने की पहल करनी पड़ेगी।

—बोलो फिर क्या करना है। सरला ने तुलजे राम की हिम्मत बढ़ाते हुए कहा—मैं महिला मंडल की सदस्याओं को साथ लेकर इसे पकड़ कर गाँव में ले जाकर एक कमरे में बंद कर देती हूँ।

—ऐसा मत करना, तब तो बात ही बिगड़ जाएगी...अभी यह नशे के उन्माद में है...शाम के समय आप लोग इससे अकेले में बात करके समझाना...इस तरह खुलेआम नड़ जाति की महिलाओं से अश्लील प्रदर्शन करवाने से किसके पाप कटेंगे? यह तो नारी जाति का घोर अपमान है। महाभारतकाल में द्रोपदी के चीर हरण के समय भगवान श्रीकृष्ण ने उसकी रक्षा की थी...मगर यहाँ तो नारी अस्मिता सरेंआम निलाम हो रही है...काहिका के नाम पर सैंकड़ों दुशासन अश्लीलता का खेल खेल रहे हैं।

...तुलजे राम के कहे अनुसार महिला मंडल की महिलाओं ने नड़न विमला से अकेले में बात की। योजना के मुताबिक़ उसे सारी बात समझा दी गई थी...दूसरी ओर तुलजे राम ने अपने साथियों के साथ नड़ और उसके सहयोगियों के साथ गुप्त मिटिंग करके उन्हें इस बात के लिए राजी कर लिया था कि वे काहिका वेदी के बाहर लोगों में न जाएँ...खासकर महिलाओं के बीच जाकर अश्लील हरकतें नहीं करेंगे...सारी योजना गुप्त थी। देवता के कारिंदों को इसकी भनक नहीं लगने दी गई थी...काहिका उत्सव के सारे कारज व्यवस्थित रूप से चल रहे थे।

सराय का उद्घाटन करने के बहाने विधायक मानसिंह ठाकुर भी काहिका में शामिल हो चुका था। वह भी काहिका में छिदरा करवा कर अपने पापों का प्रायश्चित करने पहुँच गया था। अब राजनीति में रहते हुए झूठ-सच्च तो बोलना पड़ता है...चुनाव जीतने हैं तो पैसों का जुगाड़ भी करना पड़ता है...और फिर सत्ता में रहते हुए आठ-दस औरतों के साथ संबंध हो ही जाते हैं। हालाँकि, विधायक की दो शादियाँ हो चुकी थी...फिर भी साठ-पैंसठ की वय में भी सरकारी साँड़ की तरह इधर-उधर मुँह मारने की आदत अभी गई नहीं थी। अब इतने सारे पापों का बोझ कम करने के लिए काहिका से बढ़िया और क्या हो सकता था? तो जनाब विधायक मान सिंह ठाकुर ने भी अपने सारे राजनैतिक जीवन के पापों का प्रायश्चित काहिका वेदी पर छिदरा करवा कर ही कर दिया। लगे हाथ प्रधान, कारदार, खीमे राम और दूसरे लोगों ने भी छिदरा करवा दी...और हो गए पाप मुक्त और पाप कमाने के लिए।

ढोल-नगाड़ों का शोर अब लगातार बढ़ता जा रहा था। नड़ के मर्छित होने का

समय आ गया था...देवता की परीक्षा की घड़ी क़रीब आ पहुँची थी...नड़ ज़िंदा नहीं हुआ तो देवता के रथ को भी उसके साथ जला दिया जाएगा...देवता की सारी संपति की मालिक नड़ की पत्नी हो जाएगी। वाद्ययंत्र बजते जा रहे थे...तनाव भी बढ़ने लगा था...तीन दिन से चली आ रही मस्ती का माहौल अब ख़त्म हो गया था। देवता के कारिंदों ने तांबे के सिक्के को घिसकर दूध में मिला दिया था...नड़ को तांबा मिला दूध पिला दिया गया था। सबके चेहरों पर उदासी का आलम था। अगर नड़ ज़िंदा नहीं हुआ तो ? यह सवाल सबके चेहरों पर उभर रहा था। परेशान तो नड़न भी थी...महिला मंडल के साथ हुई मिटिंग के बाद उसने शराब नहीं पी। उसका दिल घबराने लगा, अगर देवता की शक्ति नहीं लौटी तो उसका पति मर जाएगा...फिर उसका क्या होगा ? देवता की जायदाद उसे मिलेगी पर उसका वह क्या करेगी जब उसका मर्द ही नहीं रहेगा। वह कैसे जी पाएगी उसके बिना...उसे लगा कि मेले में सबके सामने उसके पति की बलि दी जा रही है और सब लोग तमाशबीन बने यह तमाशा देख रहे हैं।

शाम का अंधेरा बढ़ता जा रहा था। पहाड़ी की चोटी से सूरज की आख़िरी किरण अलविदा कह रही थी। नड़न की आँखों के आगे अंधेरा सा छाने लगा था...वह भीड़ से थोड़ा हट कर किनारे पर खड़ी हो गई। इतने में विधायक की नज़र उस पर गई...डरी सहमी हिरणी सी नड़न का सौंदर्य उसके अंदर के जानवर को हिंसक बनाने लगा। मौक़ा ताड़कर वह उसके क़रीब जा पहुँचा, इस समय सबका ध्यान काहिका वेदी में नड़ की गतिविधियों पर था...नड़ कभी भी मुर्छित होकर गिर जाएगा। विधायक ने विमला से कहा—नड़न तू खामोश क्यों खड़ी है...चल नड़खण कर...हमारे भी पाप धुल जाएँगे तुझसे छिदरा करवा कर...वो जो तेरे हाथ में था, लक्कड़ का वो कहाँ है ? चल मेरी भी छिदरा करवा दे। इससे पहले कि वह कुछ और हरकत करता, नड़न ने पलट कर उसके मुँह पर ज़ोरदार थप्पड़ दे मारा—हरामजादे अपनी माँ-बहन के हाथ में दे अब उसे और करवा ले जी भर कर छिदरा...यहाँ मेरे घरवाले की ज़िंदगी दाव पर लगी है और तू! इसके साथ ही वह उस ओर भागी जहाँ देवता के कारिंदें उसके मुर्छित पति की अर्थी को गाँव में घुमा रहे थे...देवता का रथ भी काहिका वेदी पर डोल रहा था। जौ के आटे हवा में उछाल कर बुरी आत्माओं को दूर रहने का आह्वान किया जा रहा था...बीच-बीच में टोपीदार बंदूक़ों के फायर भी हवा में किए जा रहे थे। ढोल-नगाड़ों के भारी भरकम शोर के बीच नड़न के रोने की आवाज़ दब कर रह गई थी।

मगर तुलजे राम ने विमला द्वारा विधायक को तमाचा जड़ते हुए देख लिया था...विधायक के पास आकर वह धीरे से बोला—क्यों ठाकर जी, हो गई छिदरा ?

●●●

कथा लेखक मुरारी शर्मा का जन्म हिमाचल प्रदेश के मंडी जिला की बल्हघाटी स्थित मलवाणा गाँव में 26 जनवरी, 1962 को साधारण किसान परिवार में हुआ। विभिन्न जन संगठनों में सक्रिय भागीदारी के अलावा लंबे समय तक लोक संस्कृति व सामाजिक मुद्दों पर स्वतंत्र लेखन एवं पत्रकारिता। राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक पत्रिकाओं में एक दर्जन से अधिक कहानियाँ प्रकाशित। कहानी मुट्ठी भर धूल का स्थानीय संस्था द्वारा नाट्य मंचन। लोकनाट्य बांठड़ा पर पुस्तक प्रकाशित। आकाशवाणी और दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण। विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित। बाणमूठ कहानी पर वर्ष 2009 का रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार।

संप्रति : ब्यूरो प्रभारी, अमर उजाला, मंडी।

संपर्क : 133/7, मोती बाजार
मंडी— 175001 (हिमाचल प्रदेश)

अंतिका प्रकाशन
सी-56/ यूजीएफ-4
शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II
गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.)

मूल्य : 200/-

ISBN 978-93-80044-32-3